अंक १४८

अक्तूबर-दिसंबर २०१९

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

- अंशु जौहरी
- मालती जोशी
- राजगोपाल सिंह वर्मा
- जयंत
- सुरेंद्र अंचल
- ओमप्रकाश मिश्र

आमने-सामने

देवेंद्र कुमार पाठक

सागर-सीपी

असगर वज़ाहत

२० रुपये

सिंगापुर यात्रा की कुछ झलकियां

अक्तूबर-दिसंबर २०१९
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-367-1044
● **कैलीफ़ोर्निया संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। सुरंग भरे पहाड़ – अंशु जौहरी
।। १५।। बिदा – मालती जोशी
।। २१।। पेइंग गेस्ट – राजगोपाल सिंह वर्मा
।। २७।। उफ़ान – जयंत
।। ३१।। वह नहीं आयेगी – सुरेंद्र अंचल
।। ३५।। काकू की जेल यात्रा – ओमप्रकाश मिश्र

लघुकथाएं

।। १९।। सोच / डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा
।। २०।। नन्ही गोरैय्या / डॉ. सीमा शाहजी
।। २६।। मध्यस्थ / डॉ. हूंदराज बलवाणी
।। ३०।। प्रौढ़-प्रेम / सेवा सदन प्रसाद
।। ३४।। नकारात्मक ऊर्जा / केदारनाथ "सविता"
।। ४५।। सपना / केदारनाथ "सविता"

ग़ज़लें / कविताएं

।। १९।। ग़ज़ल / मनाजिर हसन "शाहीन"
।। २५।। वो पागल (कविता) / ज्योति मिश्रा
।। ३७।। ग़ज़ल / शाहिद अब्बास "अब्बासी"
।। ४२।। ग़ज़लें / डॉ. मनोहर अभय

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ३९।। "आमने-सामने" / देवेंद्र कुमार पाठक
।। ४३।। "सागर-सीपी" / असगर वज़ाहत
।। ४७।। "औरतनामा" : मुत्तुलक्ष्मी / डॉ. राजम पिल्लै
।। ४९।। पुस्तक-समीक्षा

●"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी ●
facebook.com/
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : मेरलियॉन पार्क (सिंगापुर), १८ सितंबर २०१९.
फ़ोटो : मंजुश्री

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

एक और वर्ष बीत गया. हम २१वीं सदी के दूसरे दशक की समाप्ति पर हैं. "कथाबिंब" का यह १४८वां अंक वर्ष २०१९ का अंतिम अंक है. जनवरी के पहले सप्ताह के बाद ही इस अंक की प्रतियां पाठकों तक पहुंच पायेंगी. कभी-कभी स्थितियों पर आपका नियंत्रण कतई नहीं रह जाता. विज्ञापनों के अभाव में अंक निकालना मुश्किल हो जाता है. प्रकाशित एक विज्ञापन नया साल प्रारंभ हो जाने के बाद ही मिल सका. बहरहाल, देर आये दुरुस्त आये! हम सभी रचनाकारों और पाठकों के आभारी हैं, साथ ही अपने विज्ञापन-दाताओं के जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक आर्थिक संबल हमें दिया. सभी को नये साल की शुभकामनाएं.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार" के लिए अभिमत भेजने हेतु "मत-पत्र" पृष्ठ ५६ पर छपा है. वर्ष २०१९ के सभी अंकों में, इस वर्ष २४ कहानियां प्रकाशित हुई हैं. यह परिवर्तन पिछले साल से किया गया है, इससे पूर्व वर्ष में २० कहानियां ही छपती थीं. साथ ही पुरस्कारों की संख्या ८ से बढ़ाकर १० कर दी गयी है. पाठकों से निवेदन है कि मत-पत्र के माध्यम से, पोस्ट कार्ड अथवा मेल द्वारा, अपने अभिमत का क्रम हमें भेजें. पाठकों से यह भी अनुरोध है कि कृपया अधिक से अधिक संख्या में इस आयोजन में भाग लें. "कथाबिंब" ही एक मात्र पत्रिका है जो पाठकों के सहयोग से लोकतांत्रिक तरीक़े से कहानी लेखकों को प्रति वर्ष पुरस्कृत करती है. वर्ष के सभी अंक आप "कथाबिंब" की वेबसाइट पर भी पढ़ सकते हैं. वेबसाइट के अलावा "कथाबिंब" को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है. ●

आइए, इस अंक की कहानियों पर कुछ बात करें : पहली कहानी *"सुरंग भरे पहाड़"* की कथाकारा अंशु जौहरी एक प्रवासी लेखिका हैं. कहानी की नायिका मेघालय की यात्रा पर आयी है. जंगल, पहाड़, मेघ चारों ओर प्राकृतिक सौंदर्य बिखरा पड़ा है. मेघों का घर है मेघालय. दूर से लगता है कि सारा कुछ अनछुआ है. लेकिन वास्तविकता इससे कहीं भिन्न है. रैट-होल माइनिंग ने सारे पहाड़ खोखले कर दिये हैं. दूसरी कहानी *"बिदा"* की वरिष्ठ रचनाकार श्रीमती मालती जोशी जी हैं. अनेक भारतीय परिवारों की त्रासदी है कि कई बार आर्थिक संबल प्रदान करने के लिए बहन को भी नौकरी करनी पड़ती है. देखा जाये तो जब लड़का-लड़की बराबर हैं तो इसमें कोई बुराई नहीं है. बहन की आयु बढ़ती जाती है लेकिन धीरे-धीरे घर वाले इस ओर ध्यान नहीं देते कि बहन के मन में भी अपना घर बसाने की इच्छा होती है. इस संबंध में अंतत: कहानी की नायिका स्वयं फ़ैसला लेती है. अगली कहानी *"पेइंग गेस्ट" (राजगोपाल सिंह वर्मा)* बिल्कुल अलग तेवर की कहानी है. हम कश्मीर को भारत का अभिन्न भाग मानते हैं लेकिन साथ ही हर कश्मीरी को शक की निग़ाह से देखते हैं. कश्मीर से आयी इशिता को किसी तरह जेएनयू में एडमीशन तो मिल गया लेकिन होस्टल में जगहें भर चुकी थीं. बाहर की आसपास की कॉलोनियों में कोई भी उसे पेइंग गेस्ट रखने तैयार नहीं था. आईआईटी कैंपस में रहने वाले बनर्जी परिवार ने उसे अपने यहां रखना स्वीकार किया. समय के साथ बनर्जी परिवार से उसके घनिष्ठ संबंध हो गये. लेकिन किसी ने बनर्जी साहब की शिकायत कर दी कि उन्होंने घर में किसी आतंकवादी को पेइंग गेस्ट रखा है. उन्हें कैंपस का घर छोड़ना पड़ा. इशिता को लगा कि वही इस सबकी ज़िम्मेदार थी. *"उफान"* शीर्षक कहानी भाई जयंत की "कथाबिंब" में पहली कहानी है. हर साल देश का एक बड़ा भू-भाग बाढ़ से प्रभावित होता है. एक स्थान पर पानी न भी बरसे तो भी नदियों में उफान आ जाता है. जगह-जगह सरकारी कर्मचारी जल-स्तर पर निग़रानी के लिए तैनात रहते हैं. बचाव-कार्य और रसद पहुंचाने के लिए भी अनेक लोग लगे होते हैं. उफान हर किसी के लिए कमाई का ज़रिया बन जाता है. कुछ मौक़े का फायदा उठाकर सेक्स की अपनी तृप्ति में भी पीछे नहीं रहते. *"वह नहीं आयेगी"* (सुरेंद्र अंचल) अंक की पांचवी कहानी है. ग़रीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए सरकार नित नयी योजनाओं और स्कीमों की घोषणा करती है. किंतु जिन लोगों तक लाभ पहुंचना चाहिए, बिचौलियों के कारण वे वंचित के वंचित ही रह जाते हैं, पंक्ति के अंत में खड़े के खड़े रह जाते हैं. भाई ओमप्रकाश मिश्र की कहानी *"काकू की जेल यात्रा"*, अंक की अंतिम कहानी के काकू एक आम भारतीय किसान हैं. उन्होंने परिस्थितियों के आगे हार नहीं मानी. किरपाले काकू का पूरा जीवन कृषि और प्रकृति पर निर्भर है. खेती का दुश्मन काकू का दुश्मन है. हाड़ तोड़ने में वे जी नहीं तुड़ाते. वर्षा की कमी से वे ख़रीफ की फ़सल नहीं ले सके. कुआर में बारिश हुई तो फ़सल कुछ अच्छी हुई. एक खेत गिरवी रखना पड़ा था. फ़सल की नाप-जोख कर ही रहे थे कि वसूली के अधिकारी वसूली करने आगये और गल्ला जबरन हथिया लिया. काकू ने आव देखा न ताव, नुमाइंदों पर लाठी बरसाना शुरू कर दिया और अब काकू जेल में हैं ! ●

पिछले तीन महीनों का समय देश के लिए काफ़ी राजनीतिक उथल-पुथल वाला रहा. कर्नाटक में एक बार फिर सत्ता परिवर्तन हुआ. देखना होगा कि यदियुरप्पा कब तक मुख्यमंत्री की गद्दी संभाल पायेंगे. कई बार थोड़े-थोड़े दिनों के लिए उन्होंने यह पद सुशोभित किया है. कर्नाटक का जातीय समीकरण विचित्र है. कब कौन-सा धड़ा नाराज़ हो जाये कहना मुश्किल है. कर्नाटक की तरह ही महाराष्ट्र में भी किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला. भाजपा और शिवसेना ने मिल कर चुनाव लड़ा. चुनाव से पूर्व सभी जनसभाएं साथ-साथ कीं. महाराष्ट्र की जनता ने इसी उम्मीद में वोट डाले कि यही गठबंधन चुनाव जीते. चुनाव के परिणाम भी आशा के अनुरूप ही आये. गठबंधन को मिलाकर स्पष्ट बहुमत के रूप में १६० के लगभग सीटें मिलीं. हिंदुत्व की विचार-धारा वाले दोनों दल २८ सालों से कुछ अधिक साथ थे. भाजपा को १०५ सीटें मिलीं और शिव सेना को ५६. संभवत: शिवसेना अकेले चुनाव लड़ती तो इतनी सीटें नहीं आतीं.

लग रहा था कि दोनों मिलकर सरकार बनायेंगे. लेकिन शिवसेना ने जनादेश की पूर्ण अवहेलना की और स्वार्थवश धुर विरोधी पार्टियों से हाथ मिलाया. कहा जा रहा है कि यह स्व. बाल ठाकरे का स्वप्न था कि कभी न कभी महाराष्ट्र का मुख्यमंत्री शिवसेना का बने! जनतांत्रतिक कॉन्ग्रेस पार्टी (एनसीपी) के नेता शरद पवार ने अपने परिवार के कुछ लोगों को मंत्री-पद दिलाने का भी मौक़ा नहीं गंवाया. आनन-फानन में कहीं का ईंट कहीं को रोड़ा मिला कर एक खिचड़ी सरकार बन गयी. तीनों दलों को एक साथ लाने का श्रेय शरद पवार को दिया जा रहा है जिन्हें एक समय सोनिया गांधी का नेतृत्व स्वीकार नहीं था इसीलिए इंदिरा कॉन्ग्रेस छोड़कर एक नयी पार्टी बनायी थी. आज आदर्शवादिता की बात करना व्यर्थ है, *"सत्ता के लिए हम कुछ भी करेगा."* ऐसी सरकार जिसका रिमोट कंट्रोल सोनिया गांधी के पास है कितने दिन चल पायेगी यह कोई नहीं कह सकता!

दिसंबर में झारखंड में चुनाव हुए. यहां भाजपा की जबरदस्त हार हुई. हार का एक कारण शायद प्याज़ की बढ़ी क़ीमतें भी रही होंगी. शपथ-ग्रहण समारोह के समय, कर्नाटक की तरह ही एक बार फिर विपक्ष के नेता मंच पर हाथ में हाथ मिलाते हुए दिखायी दिये. पिछले कुछ चुनावों से अब कोई ईवीएम में गड़बड़ी की बात नहीं कर रहा है. अचानक सब *"ख़ामोश"* क्यों हैं! मीठा-मीठा गपगप, सीठा-सीठा थू-थू.

पिछले तीन-चार महीनों के दौरान देश को अनेक घटनाओं से दो-चार होना पड़ा है. देश के एक दिग्गज कॉन्ग्रेसी नेता श्री चिदंबरम जी ने तीन महीनों से अधिक समय तिहाड़ जेल में गुज़ारा. अपराध कितना भी संगीन हो लेकिन जेल में उनके साथ जिस प्रकार का व्यवहार हुआ उसे कतई भी उचित नहीं ठहराया जा सकता, उन्हें सामान्य सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं थीं. पहले दिन से ही उनकी ज़मानत के लिए अनेक बार प्रयास किया गया. बहुत बड़े-बड़े, नामी वकील इस कोशिश में लगे थे. चिदंबरम जी देश के गृहमंत्री एवं वित्तमंत्री भी रहे हैं. ज़मानत के बाद कॉन्ग्रेस कार्यकर्ताओं ने उनका बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया, ऐसा लगा कि जेल से बेदाग़ छूटकर आये हों. तिहाड़ में क़ैद निर्भया केस के आरोपियों का मुकदमा निपट गया. सभी जीवित अपराधियों को फांसी की सज़ा सुनाई गयी. फास्ट ट्रैक में मुकदमा होने के बावजूद सात साल लग गये. अब बस फांसी की तारीख़ पक्की होनी बाक़ी है. सदियों से चले आ रहे राम जन्म के बहुत ही अहम मुकदमे का फ़ैसला भी इसी दौरान आया. पांचों न्यायाधीशों ने सर्वसम्मति से हिंदुओं के पक्ष में अपना निर्णय सुनाया. मुसलमान भाइयों को भी जन्मभूमि को छोड़कर, अयोध्या में ही मस्जिद बनाने के लिए पांच एकड़ ज़मीन देने का आदेश दिया गया है. यह अंदेशा था कि मुसलमानों के पक्ष में ग़र फ़ैसला नहीं आया तो संभवतया बड़े पैमाने पर दंगा-फसाद हो, किंतु ऐसा नहीं हुआ. सरकार ने पहले से काफ़ी एहतियाद बरती. सरकार और प्रधानमंत्री ने शुरू से ही इस मुकदमे से स्वयं को अलग रखा. अनेक मुस्लिम संगठनों ने भी कहा कि कोर्ट का फ़ैसला उन्हें मान्य होगा. दोनों पक्षों के बीच आपसी समझ बनाने की कई बार कोशिशें भी की गयीं लेकिन सब प्रयास विफल हुए. आशा है कि भविष्य में दोनों पक्षों के बीच वैमनस्य की भावना में कमी आयेगी.

आपसी वैमनस्य के कारण ही बरसों से कश्मीर में अराजकता चली आ रही थी. इसके चलते अनगिनत उग्रवादियों, बेकसूर सामान्य नागरिकों और सैनिकों की जानें गयीं. कश्मीर से अनुच्छेद ३७० का हटाना मोदी सरकार की दूसरी पारी की अब तक की सबसे बड़ी सफलता है. स्थिति नियंत्रण में लाने के लिए शुरू में, सरकार को सख़्त क़दम उठाने पड़े. थोड़ा समय अवश्य लगा है लेकिन अब हालात सामान्य हो रहे हैं. पत्थर फेंकने की घटनाएं पूरी तरह ख़त्म हो गयी हैं. अनेक इलाक़ों से सेना हटा ली गयी है. कुछ नेता अब भी अपने घरों में नज़रबंद हैं. आशा है शीघ्र ही इन्हें भी रिहा कर दिया जायेगा.

इसी तरह नक्सली हमलों में भी काफ़ी कमी आयी है. भारत एक विशाल देश है. पिछली सरकारों ने बहुत-सी मूलभूत समस्याओं की ओर ध्यान ही नहीं दिया, हमेशा उन्हें कालीन के नीचे सरका दिया. राजीव गांधी के बाद से कभी भी पूर्ण बहुमत वाली सरकार बन ही नहीं पायी. जोड़-तोड़ करके सरकारें बनती रहीं. कोई न कोई वोट बैंक नाराज़ न हो जाये इसलिए सख़्त निर्णय नहीं लिये गये. नेतृत्व की इच्छा शक्ति की कमी भी एक बड़ा कारण था. आज यदि कश्मीर में शांति बहाल हुई है और नक्सल गतिविधियों में कमी आयी है तो इसका कारण बड़े पैमाने पर जो फंडिंग होती थी, जड़ में जाकर उस पर रोक लगा दी गयी है. आज किन्हीं क्षेत्रों में मंदी अनुभव की जा रही तो उसका मुख्य कारण "बाज़ार" में नग़दी की कमी है. दो नंबर का धंधा करना अग़र पूरी तरह ख़त्म नहीं हुआ है तो आसान भी नहीं रह गया है. बड़े-बड़े घोटाले सामने आ रहे हैं. अनेक बैंकों के काम-काज की जांच हो रही है. ●

इसी तिमाही में संसद के शीतकालीन सत्र में दोनों सदनों में राष्ट्रीय नागरिकता अधिनियम बहुमत से पारित हुआ. कई विपक्षी दल सरकार के साथ नज़र आये, तभी ऐसा संभव हो पाया. जब लोकसभा में वोट पड़े तो शिवसेना ने पक्ष में वोट डाले किंतु इस बीच महाराष्ट्र में कॉन्ग्रेस के साथ सरकार बनाने की जोड़-तोड़ ज़ारी थी. दो दिन बाद बिल राज्यसभा में आया, कॉन्ग्रेस ने जरा-सी आंख दिखाई और शिवसेना ने विरोध में वोट डाले! संसद में दाल नहीं गली तो विपक्ष रानाअ (एनआरसी) के विरोध में सड़कों पर उतर आया है. क्या यह विरोध भारतीय संसदीय प्रणाली का सीधा-सीधा विरोध नहीं है. विरोध करना हर किसी का अधिकार है. आप धरना दीजिए, सत्याग्रह कीजिए, मोमबत्ती लेकर मार्च कीजिए. न्यायालयों में अपील कीजिए. तोड़-फोड़, पत्थरबाजी, बसें जलाने और सरकारी संपत्ति को नुक़सान पहुंचाना किसी भी तरह ज़ायज नहीं ठहराया जा सकता. यह और कुछ नहीं देश के प्रति विद्रोह है, देश-द्रोह है!

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' का १४७ वां अंक (जुलाई-सितंबर) प्राप्त हुआ. हस्तगत होते ही बेहद सुखानुभूति का एहसास हुआ. 'कथाबिंब' एक साहित्यिक एवं स्तरीय पत्रिका है इसमें तो कोई दो राय हैं ही नहीं. पहले भी मैंने कुछ अंक पढ़े हैं. और पिछले अंक पढ़ने की दिल में, अभिलाषा अभी बाक़ी है. यदि उपलब्धता की संभावना हो तो हार्दिक आभार. अच्छी स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं का संग्रह अपने पास हो तो यह पूंजी की तरह है.

सर्वप्रथम संपादकीय से रूबरू होकर पत्रिका का स्वरूप दृष्टिगोचर हो जाता है. समसामयिक विषयों का प्रभावपूर्ण सारगर्भित विश्लेषण बहुत ही सटीक होता है. रचनाओं का चयन बहुत ही उत्तम रहता है और जिस तरह आप अपने संपादकीय में उनका सार लाजवाब तरीक़े से वर्णित करते हैं बिना पढ़े बहुत कुछ समझ आ जाता है. पत्रिका त्रैमासिक न होकर यदि मासिक होती तो सोने पे सुहागा कहावत चरितार्थ हो जाती.

अंक की पहली कहानी संतोष श्रीवास्तव जी की 'तुम हो तो' बहुत ही मार्मिक व दिल को छू लेने वाली है. वंदना जी की कहानी 'बेड नं.९' द्रवित करती है. सच्चाई की जीत को दर्शाती 'राही' जी की कहानी 'फ़ैसला' आज के युग में सपना-सा लगता है. आत्मविश्वास को जगाती लेखिका मीनाक्षी दुबे जी की कहानी 'फ़ेयर ड्राफ़्ट' जीवन से निराश लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत है. ज़िंदगी भले ही छोटी हो लेकिन बड़ी होनी चाहिए, मुकम्मल होनी चाहिए.

राजेंद्र कुमार शास्त्री जी की कहानी नकारात्मकता, हीनभावना पर विजय प्राप्ति की सुंदर रचना है. डॉ. आवटे जी की 'ओलों की बरसात' कहानी भावनाओं की अच्छी अभिव्यक्ति है. लघुकथाओं में 'सबूत' बिलकुल समसामयिक है आज ज़रूरत है ऐसी ही हिम्मत की.

राजकमल जी की लघुकथा सच का आईना है. काव्य का समावेश पत्रिका के स्वरूप को और निखार देता है, इस बार भी काव्य धारा ने अपना प्रभाव छोड़ा है. विविधता लिये स्थाई स्तंभ पत्रिका के वास्तविक स्तंभ ही हैं. बहुत कुछ पढ़ने-सीखने, मनन करने को मिलता है. 'आमने-सामने' में इस बार श्याम सुंदर निगम जी की आत्म रचना बेहद भावपूर्ण है. वास्तव में साहित्य सृजन एक रचनाकार के लिए आत्मसुख व ईश्वरीय कृपा से कम नहीं है. रचना के कुछ अंश बहुत प्रभावित करते हैं. साहित्य सृजन वास्तव में किसी भी दंश विपदा से निकालने में सक्षम है. 'सागर सीपी', 'औरतनामा', 'पुस्तक समीक्षा' सभी उपयोगी और पठनीय हैं. एक अच्छी, स्तरीय, साहित्यिक पत्रिका से जुड़ाव जीवन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है. मंगल कामनाओं सहित...

अल्का मित्तल,

डी-५, तेज़पाल सिंह एन्क्लेव, दिल्ली रोड, मेरठ-२५० ००२, मो.९८३७३०५६१८

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर अंक यथा समय मिल गया था किंतु व्यस्तताओं के कारण पत्र विलंब से लिख पा रहा हूं.

'कथाबिंब' अब मात्र पत्रिका नहीं पाठकों की प्रतीक्षा बन चुकी है. सामयिकता समेटे अंक के ट्रेलर जैसा विचारणीय संपादकीय, कहानियों में 'बेड नं.९', 'फ़ेयरड्राफ़्ट', 'गुड मॉर्निंग सर' तथा 'ओलों की बरसात' अपने रचाव, कसाव, घुमाव के कारण विशेष हैं. कविताएं संख्या में पर्याप्त, परंतु तृप्ति में अपर्याप्त लगीं. 'आमने-सामने' में श्याम सुंदर निगम का आत्मकथ्य प्रस्तुति के चुंबकत्व के कारण रोचक है. 'सागर-सीपी', 'औरतनामा' दोनों स्तंभ पठनीय हैं. सभी रचनाकारों को साधुवाद, एक परंपरानुरूप अंक हेतु हार्दिक बधाई.

राजेंद्र तिवारी

'तपोवन', ३८-बी, गोविंदनगर, कानपुर-२०८००६.

मो.६३८६६८०७६८

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई सितंबर २०१९ अंक. इस अंक की शायद सबसे अच्छी कहानी 'तुम हो तो' (संतोष श्रीवास्तव) है. यों लगभग मृतप्राय अस्पताल के बिस्तर पर पड़े मरीजों को केंद्र में रख कर वंदना शुक्ल और

मीनाक्षी दुबे की कहानियां भी हैं जो पसंद आने लायक हैं. ये दोनों कहानियां यद्यपि अलग धरातल पर हैं पर बहुत स्वाभाविक लगती हैं. ख़ासकर मीनाक्षी की कहानी पॉज़िटिव सोच पर पेश की गयी है. वंदना शुक्ल की कहानी का अंत भी बहुत स्वाभाविक लगता है. इन सभी रचनाकारों ने बहुत सार्थक भाषा का प्रयोग किया है जो उनको एक सिद्धहस्त लेखक के रूप में स्थापित करता है. कुछ प्रयोग नयापन लिये हुए हैं. 'फ़ैसला' भी सहज तो ज़रूर है किंतु अंत का आभास आरंभ से ही होने लगता है. गुडमॉर्निंग सर रंगभेद को बड़े सहज ढंग से पेश करती है. ओलों की बरसात सामान्य ही है.

कहानियों के अलावा इस अंक में कुछ लघुकथाएं हैं, जो कोई विशेष बात कहती नज़र नहीं आती हैं. ग़ज़लें अच्छी हैं, ख़ासकर कुमार नयन की. इसी प्रकार अनिता रश्मि की कविता खूंटे से बंधे मुंशी प्रेमचंद के हीरा मोती जेठ की धूप में भी बंधे रहते हैं क्योंकि वे आज़ादी की परिभाषा नहीं जानते. अनुभव शर्मा का गीत सामान्य प्रेमगीत ही है. कुछ नयी बात वे नहीं रख पाये हैं.

स्थायी स्तंभों में आमने-सामने में जो साक्षात्कार है वह लगभग संस्मरणात्मक ही है. वे उसी के माध्यम से केवल अपनी बात कह पाये हैं. सागर-सीपी भी मात्र परिचयात्मक ही है. डॉ. राजम पिल्लै ने तमिल की ऐसी शख़्सियत के बारे में लिखा है जिसने एक देवदासी परिवार की कन्या से विवाह किया. मुत्तुलक्ष्मी के प्रगतिशील विचारों का परिचय यह लेख देता है. पंकज सुबीर के उपन्यास जिन्हें ज़ुर्म के इश्क पर नाज़ था की समीक्षा सुधा ओम ढींगरा ने सार्थक ढंग से की है जो उपन्यास को पढ़ने को विवश करती है. इस प्रकार यह अंक विशेष पठनीय बन पड़ा है.

– मनमोहन सरल

७६-पत्रकार, बांद्रा (पूर्व), मुंबई ४०० ०५१.

मो.: ९८२१२७५५६८

'कथाबिंब' का १४७ वां अंक मिला. हार्दिक धन्यवाद. हर अंक नियमित मिल रहा है.

इस अंक में छह कहानियां छह विषयों पर आधारित हैं जो पूर्ण और अच्छी हैं. कहानी 'तुम हो तो...' बहुत मार्मिक लगी. नायिका की स्थिति अरुणा शानबाग से मिल रही है. ऐसी ही दुखद और भयावह स्थिति से ३६ सालों तक गुज़र कर उनका निधन हुआ था.

मरणासन्न मीरा की ज़िंदगी में कपिल ही प्राण है. दुष्कर्म से पीड़ित प्रेमिका को कोई भी प्रेमी स्वीकार नहीं करता बल्कि तिरस्कार करता है. 'तू नहीं तो कोई और सही' का राग अलापता है लेकिन कपिल एक सच्चे प्रेमी का उदाहरण पेश कर रहा है. ख़ुद के मां-बाप भी अपने बच्चों पर रुपये और समय बर्बाद कर अफ़सोस जताते हैं उसकी मौत की प्रार्थना करते हैं. वहीं प्रेमी अपने साथी की हर सांस के साथ सांस लेता है. कपिल एक मिसाल है, प्रेरणा है. संतोष श्रीवास्तव जी को ख़ूब बधाई इतनी सुंदर कहानी के लिए. 'गुड मॉर्निंग सर' में छोटी बच्ची के मुंह से बार-बार गुड मॉर्निंग बोलना इस बात की तरफ़ इशारा करता है कि उसके लिए हर समय हर घड़ी गुड मॉर्निंग है यानी सुबह है उजाला–प्रकाश से भरपूर आशा-विश्वास से पूर्ण! इसी कारण नायक की अपने काले रंग की हीन भावना ख़त्म होती है. लेखक को बधाई और मंगल कामना.

अंक की तीनों लघुकथाएं प्रेरणाप्रद हैं. ख़ासकर 'सबूत'– आजकल गांव की लड़कियां भी जान गयी हैं कि आज डी एन ए टेस्ट से अजन्मे बच्चे के पिता की भी पहचान हो रही है. ऐसा नहीं कि मतलब निकल गया, पहचानते नहीं.

बहुत ख़ुशी की एक बात साझा कर रही हूं. जनवरी-मार्च २०१८ अंक में मेरी कहानी 'नाही है कोई ठिकाना' प्रकाशित हुई थी जो एक कुंवारी लड़की की सेरोगेट मदर बनने की कथा थी. कहानी बहुत ज़्यादा चर्चित हुई थी. उस समय बहुत से पाठकों ने फ़ोन भी किया था और आज भी करते हैं. उसे उत्तम कहानी का 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार', भी मिला.

उसी कहानी का मराठी की ७७ वर्षीय वरिष्ठ साहित्यकार श्रीमती उज्ज्वला केलकर जी ने मराठी भाषा में अनुवाद

किया है जो दिवाली विशेषांक 'हेमांगी २०१९' में प्रकाशित हुई है. उज्ज्वला जी को धन्यवाद के साथ 'कथाबिंब' के संपादक सर डॉ. अरविंद जी, आदरणीय श्रीमती मंजु मैम तथा पत्रिका की पूरी टीम को ख़ूब-ख़ूब धन्यवाद कि मेरी प्रगति हो रही है. मेरा 'कथाबिंब' में छपना, पुरस्कृत होना और कहानी अनुवादित होना यह बहुत बड़ी बात है. जिसे शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल है.

- नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

द्वारा श्री भगवान प्रसाद, राजा बाज़ार, कटेचा रोड, बिहिया, जि.भोजपुर-८०२१५२ (बिहार)
मो.७२५६८८५४४१

▸▸ कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका 'कथाबिंब' का १४७ वां अंक पढ़कर, सृजनात्मक साहित्यिक संवेदना का संवाहक अहसास 'कुछ कही, कुछ अनकही' के चिर-परिचित कौतूहल से अभिभूत हो उठा. संपादकीय, साहित्यिक सरोवर में अपनी विशिष्ट सुगंध और विचारक सम्मोहन का दर्शन है. निश्चित तौर पर एक साहित्यकार की दृष्टि समाज के प्रति समर्पित रहकर राजनीति पर सशक्त टीका-टिप्पणी करती है. एक से बढ़कर एक कहानियां, लघुकथाएं, स्तंभ और कविताएं/ ग़ज़लों को पढ़कर इनके रचनाकारों की सांसारिकता, समन्वयन, सुसंपन्न संदेशात्मक अभिरुचि का सम्मान करने में हर्ष की अनुभूति होती है. कभी-कभी महसूस होता है कि 'कथाबिंब' परिवार का सदस्य होना मेरे लिए ईश्वरीय आनंद की प्राप्ति का बोध मार्ग है. डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' जी के साथ पत्रिका 'कथाबिंब' के प्रकाशन से जुड़े सभी कर्मचारियों, सहयोगियों व रचनाधर्मियों को हृदय से बधाई देता हूं.

विश्वंभर दयाल तिवारी

३०२, कृष्णा रेज़ीडेन्सी सोसा., केंद्रीय विहार, सेक्टर-२०, खारघर, नवी मुंबई-४१० २१०
मो.७५०६७९८०९०.

▸▸ कथाबिंब का जुलाई-सितंबर २०१९ अंक प्राप्त हुआ. आभार. औरतनामा में डॉ. मुतुलक्ष्मी रेड्डी के व्यक्तित्व/ कृतित्व से परिचय कराने के लिए डॉ. राजम पिल्लै का बहुत-बहुत आभार. डॉ. रेड्डी के धैर्य, साहस औत प्रतिबद्धता के लिए सादर नमन. कहानियों में 'तुम हो तो'. (संतोष श्रीवास्तव) सबसे अच्छी लगी, कपिल का धैर्य क़ाबिले तारीफ़ है. यही कहानी मैंने हिंदुस्तानी ज़ुबान मुंबई के अक्तू-दिसं.२०१८ के अंक में भी पढ़ी है. अन्य कहानियों में 'बेड नं. ९'... (वंदना शुक्ला) 'गुड मॉर्निंग सर'... (राजेंद्र गुरू) व 'ओलों की बरसात'... (डॉ. आवटे) अच्छी लगीं. सभी कहानियों में कोई न कोई सकारात्मक संदेश है. लघुकथाओं में (किशन शर्मा) 'सबूत' व (राज कमल सक्सेना), 'ख़ून तो...लाल था' ने ध्यान आकर्षित किया. अनिता रश्मि की कविता एवं कुमार नयन की ग़ज़ल के कुछ शेर पसंद आये. संपादकीय में वक़्त की नब्ज़ पर आपने अच्छे से हाथ रखा है. पल-पल बदलते राजनैतिक घटनाक्रम की नदी में तो बहुत–सा पानी बह गया है. दिल्ली में धुएं का कहर, पुलिस, वकीलों का झमेला और अब महाराष्ट्र में सत्ता की रस्साकसी. लगता है कवायद, प्राणायाम, अनुलोम-विलोम तीनों दिव्यांग दलों में ज़ारी है. किसी का भी जोर कमज़ोर न पड़ने पाये गुपचुप इसी बात की मैराथन ज़ारी है. आवरण चित्र आकर्षक है.

आनंद बिल्थरे,

प्रेमनगर, बालाघाट-४८१००१, (म. प्र.)

▸▸ क्रिकेट की तरह ही राजनीति के लिए भी कहा जाता है कि अंतिम गेंद तक कुछ भी हो सकता है, सब कुछ संभव है. क्रिकेट चान्स का खेल है. जबकि जनादेश में करोड़ों लोगों की भावनाएं जुड़ी होती हैं. आदमी कोई भेड़-बकरी नहीं जिसे बांध कर रखा जाये. लेकिन अभी हाल में महाराष्ट्र में ऐसा ही देखने में आया. आदमी की अपनी इच्छा-शक्ति है जिसका वह मालिक है. यदि कोई व्यक्ति बंधुआ है तो वे महाराष्ट्र के विधायक हैं. उन्हें कभी एक शहर से दूसरे शहर और एक होटल से दूसरे होटल में रखा जा रहा था. इस डर से कि कहीं इनमें से कुछ बागी न हो जाएं और भाजपा से मिल जाएं. वैसे, जब भी सरकार के लिए बहुमत की जोड़-तोड़ करनी होती है तो ऐसा ही होता है. दल-बदल के क़ानून का कोई अर्थ नहीं रह गया. इसमें परिवर्तन होना चाहिए. किसी के भी दल-बदल करने पर उसकी सदस्यता ख़त्म होनी चाहिए.

अंक की सभी कहानियां एक से बढ़कर एक हैं. सभी कहानीकारों को बधाई.

दिलीप कुमार गुप्ता,

११, छोटी वमनपुरी, बरेली-२४३००१.
मो. ८२७३५७९९९९

सुरंग भरे पहाड़

अंशु जौहरी

स्नातिका, वैद्युत अभियांत्रिकी.
शासकीय अभियांत्रिकी
महाविद्यालय, जबलपुर.
स्नातकोत्तर, डिज़िटल डिज़ाइन,
सैन होज़े स्टे वि. वि. कैलिफ़ोर्निया.

न जाने क्यों हर यात्रा की समाप्ति पर यह मंथन हृदय में ज़रूर होता है कि किसी शहर में रहने वाले लोग उस शहर को उसका चरित्र देते हैं या वह शहर लोगों के अंदर उतर कर उनका चरित्र बन बैठता है. ये बात मेघालय के संदर्भ में और भी सार पूर्ण थी जिसके पर्वतीय बीहड़ों के मध्य, सर्प–सी दौड़ती सड़क पर, अपनी कार की खिड़कियों से, सुनहरी धूप की दमक में हम निहार रहे थे — बादलों के झीने घूंघट में से झांकती खासी पर्वतों की चोटियों को.

भारत के पूर्वी अंचल में बसे इस प्रदेश को 'मेघ' और 'आलय' यानि बादलों का घर यूं ही नहीं कहते. आवारा मेघों की दिशाहीन यात्राओं के मध्य खासी, जैंतिया और गारो पहाड़ियों से बुना था यह प्रकृति का जादुई करिश्मा. सघन हरी वनस्थलियों, अनगिनत झरनों, चमचमाती, इठलाती नदियों, उन पर तने छोटे-बड़े पुल, ख़ासकर वृक्षों की जीवित जड़ों के पुल, कंदराओं और गुफ़ाओं के दुःसाहसी आमंत्रण, कोयले और खनिज पदार्थों की समृद्धि और कल-कल करती अनवरत बारिश को समेटे, यह किसी तपस्यारत मुनि-सा लगता था. और यह सब, बिना धुनी हुई रुई-से थिरकते मेघों के आवास के बिना कहां संभव होता भला? वो मेघ जो पल-पल रूप बदलने वाले बहुरुपिये की भांति, कुछ ही पलों के अंतराल में काले घने कंबल की परतों से झमाझम, निर्भीक बारिश की झड़ी लगा देते थे.

'पैसे के अलावा आप हर उस चीज़ से नफ़रत करने लगते हो जो आपके पास जास्ती हों. बस पैसा कभी जास्ती नहीं लगता, मैडम.'

हमारे टूर गाइड बाली ने खिन्न-सी हंसी हंसते हुए बारिश के संदर्भ में यह बात कही थी. उसके इस कथन से मुझे सियेटल के अपने एक मित्र की याद आ गयी जिसके घर में विश्व के तमाम मरुस्थलों की पेंटिंग्स थीं. सियेटल की दिन-रात की बारिश से तंग आकर वह मरुस्थलों के चित्रों में सूखा, गरम धूप का चोखा स्वाद चखा करता था. पर बारिश की इस अतिश्योक्ति में मैंने बाली के

परिचय

: प्रकाशित कृतियां :

कहानी संग्रह – 'शेष फिर', 'अदृश्य किनारा', काव्य संग्रह – 'खुले पृष्ठ', 'बूंद का द्वंद्व', 'तुमसे जुड़े बिना.'

: लेखन :

भारत, अमेरिका तथा कैनेडा की हिंदी पत्रिकाओं में निरंतर कविताएं तथा कहानियां प्रकाशित, कादंबिनी, नवनीत, हंस, कथाक्रम, कथाबिंब, वागर्थ, अभिनव इमरोज़, वर्तमान साहित्य, हिंदी जगत, विश्वा, सृजन गाथा, हिंदी चेतना, साहित्य कुंज आदि; अंग्रेजी कहानी तथा कविताएं कुछ अमेरिकन पत्रिकाओं में प्रकाशित.

: साहित्यिक गतिविधियां :

१९९८ में इंटरनेट पर 'उदगम' नाम की हिंदी की साहित्यिक वैबजीन की शुरुआत तथा २००४ तक संपादन. 'उदगम' विश्व की सर्वप्रथम हिंदी वैबजीनों में से एक थी.; २००४ में सैन होज़े कैलिफोर्निया में ९६.१ एफ.एम से लोकप्रिय हिंदी रेडियो कार्यक्रम 'उपहार' का प्रसारण और संचालन; बे-एरिया कैलिफोर्निया में निरंतर साहित्यक हिंदी कार्यक्रमों का संयोजन : 'स्पंदन' (२०१४), 'संवाद' (२०१५), 'नावें काग़ज़ की' (२०१६), 'संगम' (२०१७), 'अभिव्यंजना (२०१८), सानिध्य (२०१८), उदभूति (२०१९) बर्कले और सैन होज़े के अमेरिकन रेडियो चैनलों पर कविता प्रसारण; बे-एरिया जैनेरेशन्स रीडिंग सीरीज (सैन फ्रैंसिसको, ओकलैंड), वैल रैड रीडिंग सीरीज़ सैन होज़े फ़्लैश फ़िक्शन फोरम - सैन होज़े में कविता तथा कहानी पाठ; सैन होज़े पोयट्री फैस्टिवल (२०१७) में हिंदी कविता पाठ तदोपरांत अंग्रेज़ी में अनूदित काव्य पाठ, साहित्य अकादमी बंगलौर में अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्यविदों के साथ 'नारीवाद के नये रूप और उसके परिणाम' पर परिचर्चा तथा उससे संबद्ध कहानी पाठ (२०१५); साहित्य अकादमी, दिल्ली में 'साहित्य मंच' में कविता पाठ (२०१७); सैन फ्रैंसिस्को लिटक्रॉल फैस्टिवल (२०१९) में कहानी पाठ.

: संप्रति :

हार्डवेयर इंज़ीनियर

वाक्य के दूसरे भाग को नज़रअंदाज़ कर दिया हो, ऐसा भी नहीं था. आख़िर कितना पैसा होना जास्ती नहीं होता? पैसा तो हमेशा कम ही लगता है.

'मेघालय कितना अनछुआ और ख़ूबसूरत है! मुझे लगता है कि प्रगति के नाम पर कई मायनों में प्राकृतिक सौंदर्य बड़ी निर्ममता से नष्ट हो जाता है.' मैंने धुंध ओढ़े पर्वत की चोटी से नीचे की हरी घाटी की तस्वीर उतारकर कहा था. उसके बाद मैं पास के रेस्तंरा की ओर चल दी थी जहां वैभवी, राघव और राजा मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे. मेरे कथन ने जैसे उसके भीतर एकत्रित सूखे पत्तों के ढेर को चिंगारी दिखा दी थी. मेरे पीछे चलते हुए बोला —

'आप कहना क्या चाहती हैं मैम? ऐसी जगहों को प्रगति से वर्जित रखा जाना चाहिए? और इन जगहों पर रहनेवालों का क्या? वो गुमनाम, बेकार सही पर उनके बच्चों को भी अच्छी शिक्षा, अस्पताल और हर उस आराम को भोगने की इच्छा क्यों नहीं होनी चाहिए जो बड़े शहर में रहने वालों को आसानी से सुलभ होती है. इन सबकी छोड़ो, हम तो यहां अपने बच्चों को पोषक आहार भी नहीं दे पाते.' उसकी आवाज़ में आक्रोश झलक रहा था.

'क्यूं इतनी भी आमदनी नहीं होती क्या?' उसके आक्रोश को नज़रअंदाज़ करते हुए मैंने बांस की मेज़ पर रखे अनानास के जूस की चुस्कियां लेते हुए पूछा था.

'आप टूर गाइड की आमदनी की बात कर रही हैं.' वह जोर से हंसा था, 'वो यहां के मौसम-सी अनिश्चित है और भरोसे के लायक नहीं. मेरे दो बेटे और एक बिटिया है. इस धंधे से तो कुछ भी नहीं होता.'

मुझे लगा कि मुझे यह कम आमद की कहानी, तय किये पैसे से और ज़्यादा पैसा ऐंठने के लिए सुनायी जा रही थी. बाली उस समय थोड़ी दूरी पर खड़ा सिगरेट के धुएं के छल्ले बना रहा था जब मैंने राजा, वैभवी और राघव के साथ अपने इस गहन होते संशय को बांटा था. मैंने देखा कि उसके माथे की सिलवटें गहरी हो गयी थीं और क्षितिज में किसी शून्य पर अटकी उसकी छोटी आंखें किसी चिंता में उलझी हुई थीं.

'जाने दे ना. उसे सुनाने दे अपनी कहानी. हम तो वही देंगे जो हमने तय कर रखा है.' वैभवी के वाक्य ने मेरा ध्यान भंग किया था.

सिगरेट के बचे-खुचे टुकड़े को अपने जूतों से कुचलकर, बाली लौट रहा था और जैसे धुएं के गुबार में उसने अपनी कड़वाहट को भी बाहर उकेर दिया हो. लौटकर वह हमें मेघालय के सबसे ख़ूबसूरत और सबसे अनछुए हिस्से दिखाने के अपने वायदे को लेकर उत्साहित था. वो हिस्से जो पर्यटकों की भीड़ से अलग-थलग थे.

अब तक की यात्रा में मैं जितना बाली को जान रही थी उतनी ही इस जगह और जगह पर रहने वालों को जानने की उत्कंठा तीव्र होती जाती थी. वह अन्य टूर गाइड्स की तरह चापलूस और नरम ज़ुबान न था. बल्कि उसका स्वर अक्सर मेघालय की कहानियां सुनाते–सुनाते तल्ख हो जाता था. उसमें आक्रोश था, किसी जानकार पर छुपे हुए दुश्मन के प्रति. और उतना ही नरमदिल भी था. किसी बकरी के बच्चे को गोद में उठाते हुए उसकी हंसी छोटे बच्चों-सी मासूम और निष्छल हो जाती थी. मेरी सहज जिज्ञासा और कौतुहल उसमें एक उत्सुकता को जीवंत करता था. राजन, वैभवी और राघव उससे बात करने से कतराते थे पर मुझे उसकी तल्ख ईमानदारी के खड़ूसपने को कुरेद कर उस नरम दिल इंसान तक पहुंचने में एक सुख-सा मिलता था. जैसे लंबे-लंबे घने पेड़ों को चीरकर सूर्य की रोशनी किसी बौने-से पेड़ पर अपनी रोशनी उड़ेल पाने का सुख भोग ले.

'...तो मैम सिर्फ़ सब हरा-हरा देखने का मन है या भीतर घुसकर लोगों की ज़िंदगियों को भी चखना चाहेंगी आप? कोई भी टूरिस्ट यहां के अस्पताल, स्कूल नहीं देखना चाहता.'

'अगर मेरे देखने से किसी की मदद होती हो तो ज़रूर देखना चाहूंगी. किसी की भी ज़िंदगी तमाशा नहीं न होती कि झांका, देखा और निकल लिये. और खेती बाड़ी है न यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय. अब यहां के लोगों का मन ही है कि जिसके कारण यहां औद्योगीकरण नहीं हो सकता, क्योंकि यहां के लोग चाहते हैं कि मेघालय के औद्यौगीकरण से प्राकृतिक सौंदर्य को क्षति न पहुंचे, कि उनके रीति रिवाज़ों, उनकी सांस्कृतिक धरोहर को क्षति न पहुंचे. इसी कारण इस राज्य को भारतीय संविधान में विशेष दर्ज़ा प्राप्त है. बोलो? है कि नहीं?'

मेरे स्वर की तीक्ष्णता पर वह मुस्करा दिया था. 'आपने तो हमारा मन मोह लिया मैम. आपको दूसरे देश में रहते हुए भी अपने देश के एक छोटे से राज्य के बारे में इत्ती जानकारी है, जित्ती यहां रहनेवालों को नहीं. आपको तो मेघालय का चप्पा-चप्पा दिखाना है. आप क़िताब ऊपर से नहीं पढ़तीं, उसके हर शब्द को गहती हैं आप.'

उसके इस कथन पर राजन, वैभवी और राघव मुझे चिढ़ाने लगे थे और बाली का चेहरा शर्म से गुलाबी हो गया था.

'कब से कर रहे हो यह, बाली?'

'कब से क्या कर रहा हूं?'

'यही टूर गाइड का काम. और अगर इसमें अच्छा पैसा नहीं बनता तो मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि साथ में कुछ और काम भी ज़रूर करते होगे.'

'वो तो आप सही कह रही हैं. इस काम को करते कुछ दो साल हो रहे.'

'केवल दो साल! उसके पहले क्या करते थे?'

'अरे मैम जाने दीजिए क्या कीजिएगा जानकर? मेरी कहानी उबाऊ और उदासी भरी है. चवन्नी के लायक भी नहीं.'

'अरे, हम चवन्नी तो देने वाले भी नहीं. हमें तो फ्री में सुनना है.' मैंने ठहाका लगाया पर वह चुप रहा. 'सुनाओ ना बाली. रास्ता कट जायेगा और उदासी कम करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है, उसे बांटना.'

वह फिर भी चुप था, जैसे किसी पशोपेश में हो. 'नहीं बताना चाहते बाली...?'

'आपने कोयले की खदानों के बारे में सुना है? रैट होल माइन्स...?'

'ज़्यादा कुछ नहीं. क्या तुम पहले कोयले की खदानों में काम करते थे?' मेरी आंखें विस्मय से चौड़ी हो गयी थीं. मैं पहली बार किसी खदान में काम करने वाले से मिली थी.

कुछ हिचकिचाते हुए उसने जवाब दिया — 'खदानों से जुड़ा हुआ था मेरा काम. यहां बहुत सारे लोगों की ज़िंदगी कोयले की खदानों पर टिकी है. खदानों के मालिकों से लेकर खदानों में काम करने वाले, फिर कोयला ढोने वाले, उन्हें आसपास के रसायनिक प्लांट में लाने ले जाने वाले, कामगार जुटाने वाले. हम इसे काला सोना कहते हैं. यह कोयला आसाम जाता है, आसपास के बिजली उत्पादन केंद्रों में जाता है. मगर जब से रैट होल माइन पर सरकारी बैन लगा है तबसे सब ख़त्म.'

मगर इस 'सब' की लंबी कड़ी में वो कहां फ़िट होता

था और कोयले के खनन पर जिसे वह रैट होल मायनिंग कह रहा था, उस पर बैन क्यों लगा था? पूछने पर बाली ने तो कुछ उत्तर नहीं दिया पर तब तक राघव ने अपना सैल फ़ोन मेरे आगे कर दिया था.

'ये लो ये लेख पढ़ो.'

'किस बारे में है?'

'इसमें तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर है.'

लेख पढ़कर मुझे एक नयी ही जानकारी मिली थी.

'बाली, क्या तुम भी रैट होल मायनिंग करते थे?' बाली ने कोई उत्तर नहीं दिया था.

'जवाब दो ना, बाली. क्या तुम भी रैट होल मायनिंग करते थे?'

'हां, जी मैडम!'

मैं भौंचक रह गयी थी.

'क्या? सचमुच? तो तो जो इस लेख में लिखा है वह सच है?'

'मैं क्या जानूं कि क्या लिखा है? पढ़ा आपने है.'

'यही कि इस तरह के खनन के लिए पहाड़ों की दीवारों में छेद करते हैं और उसे अंदर की तरफ़ को खोदते जाते हैं. और इन छेदों के मुंह क्या सचमुच तीन से चार फीट चौड़े होते हैं? इसमें यह भी लिखा है कि इस तरह की खदानों में बच्चों और छोटे क़द के लोगों का इस्तेमाल होता है क्योंकि वो इस तरह के छेदों में आसानी से घुस सकते हैं. बच्चों का? माने वो घुटनों के बल इस तरह की सुरंगों में जाते हैं, छेनी, हथौड़ी और तमाम औज़ारों के साथ.'

'हां जी मैम. फिर अंदर घुसकर, पीठ के बल लेटकर वो कोयला, खदानों की छत और दीवारों से तोड़ते हैं. कोयला उनके पैरों के बीच फंसे डिब्बे या बाल्टी में इकट्ठा करते हैं. भर जाने पर कुछ लोग उसे खींचकर बाहर लेकर आते हैं जहां क्रेन के शैफ़्ट से जुड़े एक बड़े से डिब्बे में उसे डालते हैं. यदि क्रेन न हो तो लोग अपनी पीठ पर ढोकर बाहर लाते हैं. मैंने भी किया है ये सब. और कई जगह सत्तर से दो सौ फ़ीट की खुदाई की जाती है, जिन पर बांस के खपच्चे से सीढ़ियां बनाकर उतरते हैं.''

'...और कोयला ख़त्म होने के बाद क्या करते हैं उस गड्ढे का? उसे यों ही छोड़ देते हैं? ताकि कोई भी जानवर गिर कर मर जाये या...'

'...ये उतना बुरा नहीं है जितना आप समझ रही हैं. बाहर से पहाड़ ज्यों का त्यों रहता है. इसके चलने से कितने लोगों की ज़िंदगियां चलती थीं.'

'क्या हो गया है तुम्हें बाली? कितने लोग, सब लोग नहीं होते और वो भी बच्चे और जिस तरह के माहौल में और जैसे उन्हें काम करना पड़ता है वह अमानवीय और क्रूर है! और बाहर से पहाड़ जैसा भी दिखे अंदर से तो खोखला हो रहा है ना. इसीलिए तो इस पर प्रतिबंध लगा है.'

'पुश्तों से यह चल रहा है मैडम. ऐसा नहीं कि हम अपने पर्यावरण का ध्यान नहीं रखते. आप देखेंगी तो कह भी नहीं सकेंगी कि ऐसा कुछ है.'

'तो क्या मैं देख सकती हूं?'

'जी...?'

'क्या मुझे दिखा सकते हो वो पहाड़? तुम्हारी रैट होल माइन?'

'पहाड़ देखे जा सकते हैं, रैट होल माइन नहीं. वह ग़ैर क़ानूनी है.'

'अरे बाली, कितनी दूर से आये हैं हम. और रैट होल मायनिंग करना ग़ैर क़ानूनी है. उसे देखना ग़ैर क़ानूनी नहीं है.'

'आप समझती नहीं मैडम. पहाड़ मैं दिखा दूंगा आपको.'

'अरे ज़्यादा पैसा ले लेना.'

'सवाल पैसे का नहीं है मैडम. मैं लालची आदमी नहीं हूं. आपकी सुरक्षा की फिकर है.' उसने आहत से स्वर में उत्तर दिया, जैसे किसी ने उसके ज़मीर पर चोट की हो.

उसकी आवाज़ की मायूसी का मेरे मन पर असर हुआ था.

'देख लो बाली. अपने कुछ क्षणों के पर्यटकी रोमांच के लिए हम भी, न तो तुम्हें मुश्किल में डालना चाहेंगे और न ही तुम्हें कुछ भी ऐसा करने का आग्रह करेंगे जिसे करने में तुम्हें तुम्हारी आत्मा कचोटती हो.'

गाड़ी की आगे की सीट से उसने बैक मिरर में मुझे देखा था, आंखों में न जाने कितने गुबार! फिर वह सड़क को देखने लगा था. बहुत देर तक गाड़ी में किसी ने कोई बात नहीं की. सब अपने-अपने ख़्यालों के क़ाफिलों में गुम थे. वैभवी की आंखें मुंदने लगी थीं.

'ठीक है मैडम, एक माइन दिखा सकता हूं आपको, पर इसका जिक्र आप किसी से नहीं करेंगी.'

'तुम्हारा कुछ नुकसान तो नहीं होगा?'

'अब जो होगा तो देखा जायेगा. पर जहां हम जायेंगे, वहां अभी कोई नहीं होगा.'

वैभवी अचानक सोते से जाग गयी थी. आगे बैठे राघव और राजन दोनों ने अर्थपूर्ण मुस्कान मेरी तरफ़ फेंकी थी. मैं स्वयं अचंभित थी. आज तक किसी ने मेरे किसी भी आग्रह को इतना मान नहीं दिया था. बाली के लिए एक नन्हीं-सी प्रार्थना ने मन में स्थान लिया था.

हरे-हरे पहाड़ों के नैसर्गिक सौंदर्य और अपरिष्कृत, धुले हुए आकर्षण के मध्य से गुज़रती हुई सड़क पर दो घंटों के सफ़र के बाद हम जैंतिया पर्वतों पर थे. मार्ग में न जाने कितने छोटे-बड़े झरने, लबालब तालाब और झीलें, हमसे मिले और बिछड़े. फिर रास्ता कुछ संकीर्ण हुआ और पक्की रोड की जगह कच्ची-सी सड़क ने ले ली थी, जिसके दोनों तरफ़ काले-काले छोटे-छोटे पठार खड़े थे.

'ये क्या है?' वैभवी ने पूछा.

'कोयला...'

'पर तुम तो कहते थे कि कोयले के खनन पर प्रतिबंध लगा है?'

'ये कोयला प्रतिबंध के पहले का है.'

हमने चुपचाप एक दूसरे को देखा क्योंकि कोयले के कालेपन को देख कर कहा जा सकता था कि वह ताज़े खनन से निकला कोयला है. अंततः जब हमारी कार रुकी तो हमने पाया कि उस बेहद ख़ूबसूरत हरे अंचल के बीच, हम एक पचास वर्ग फ़ीट के चौकोर गड्ढे के समक्ष खड़े थे.

'कितना गहरा है यह बाली? और रैट होल माइन कहां है?'

'क़रीब १७० फ़ीट गहरा है, यह मैडम. और वो देखिए, दीवार के सहारे बांस की सीढ़ी. उससे नीचे उतरते हैं. वह रैट होल माइन के मुंह तक ले जाती है.'

'पर दिखायी तो देती नहीं यहां से.'

'उसके लिए तो मैडम नीचे उतरना पड़ता है.' कहकर वह हंसा था.

'तो चलो ना! उतरते हैं नीचे.' यह सुनकर उसकी हंसी लुप्त हो गयी थी.

'पागल हैं क्या? आत्महत्या की इच्छा के साथ आयी है?' वैभवी ने टोका था.

पूरी प्रकृति आध्यात्मिक शांति ओढ़े हमें आमंत्रित कर रही थी. मंद पवन के झोंकों में हरे पर्वत पर टिके लंबे हरे वृक्षों की झूलती शाखाएं, दूर बहती नदी का रुनझुन स्वर, यदा-कदा एक दूसरे को टेर लगाते पक्षियों के स्वर और इन सबके बीच यह गड्ढा! न कोई आसपास था, न कोई दूर-दूर तक.

'कोई नहीं है आसपास. जल्दी से जाकर वापस लौट आयेंगे. किसी को पता नहीं चलेगा.'

'क्या देखना चाहती हैं और क्या करेंगी देखकर? कहीं पैर फिसल गया और गिर गयीं तो? और जानती हैं न कि वहां जाना भी ग़ैर क़ानूनी है.'

'यहां कहीं पर भी यह नहीं लिखा कि यह पर्यटन स्थल है, पर कहीं पर भी यह चेतावनी नहीं लिखी है कि खदानों को देखने जाना ग़ैर क़ानूनी है. कोई ना कोई बोर्ड वग़ैरह तो होना चाहिए ना! और कोई भी जगह, कोई क्यों देखना चाहता है? ताकि उस जगह के इतिहास को महसूस किया जा सके. और रहा सवाल मेरे फिसलने का, तो मैं सावधान रहूंगी और जो यहां दम तोड़ा तो कम से कम स्थानीय अख़बार की मुख्य ख़बर बनने का मौक़ा मिलेगा. 'एक आवारा अमेरिकी पर्यटक प्रतिबंधित रैट होल माइन के गड्ढे में मृत' एकदम अगाथा क्रिस्टी के सनसनीख़ेज उपन्यास की तरह.'

'मैडम, आपका हास्य न केवल वीभत्स रस से सराबोर है, बल्कि मुझे इसमें संवेदनात्मक उत्पीड़न की गंध भी आ रही है. चलिए, लिये चलता हूं मगर आप चारों में से दो ही लोग जा सकेंगे. बाक़ी दो को यहीं ऊपर रुकना होगा. और याद रखिएगा! आप अपनी ज़िम्मेदारी पर जा रही हैं. आपको कुछ भी हुआ तो मैं तो उसी समय भाग खड़ा होऊंगा. मैं निर्लज्ज किस्म का स्वार्थी इंसान हूं.' बाली ने गंभीर स्वर में कहा था.

'ये हुई न बात! इंसान तो हो ना? मुझे यहां मरने को छोड़कर यदि भाग भी गये तो भी चलेगा.'

'मैडम, मेरे तीन बच्चे हैं और बीबी को कैंसर है. मैं इस समय अपनी ज़िंदगी के साथ किसी भी तरह का ख़तरा मोल लेने की स्थिति में नहीं हूं. चलिए, चलते हैं.' उसका स्वर यूं था जैसे कांच का बर्तन धरती पर गिर कर चूर-चूर हुआ हो.

'सॉरी!' मैंने कहा ज़रूर पर उसने शायद सुना नहीं था या सुन कर अनसुना कर दिया था.

वैभवी ने आने से साफ़ मना कर दिया और वैभवी के रुकने पर राजन का उसके साथ रुकना स्वभाविक ही था. दोनों दो माह के बाद वैवाहिक बंधन में बंधने वाले थे.

'तुम्हारा मन है आने का?' मैंने राघव से पूछा.

'चल यार! अब तुझे अकेले तो हम छोड़ नहीं सकते ना!'

'क्यों, क्यों नहीं छोड़ सकते? मैं कोई बच्ची हूं?'

'नहीं, हम तो बुड्ढों को भी अकेले नहीं छोड़ते.'

कुछ यूं चुहल करते हुए हम बाली के पीछे हो लिये थे.

बांस की सीढ़ियों से नीचे उतरना सचमुच चुनौतीपूर्ण था पर बाली उन पर यूं सरसराता-सा उतर रहा था जैसे उसका रोज़ का काम हो. राघव मेरे पीछे था. सीढ़ियां उतरते न जाने कितने सारे अनजाने लोगों के हुजूम आंखों में तैर गये — अपनी पीठ पर कोयले को ढोते हुए, बाली के जैसे सरपट नीचे-ऊपर जाते हुए, उनके जिस्म, काले कोयले के रंग के और उनमें चमकती, झांकती धवल दंत पंक्तियां, जैसे वह उजली हंसी ही उनकी अंधेरी ज़िंदगियों का एकमात्र उजला सत्य थी.

उस पहली खदान के मुंह तक उतरते–उतरते, जहां बाली हमारी प्रतीक्षा कर रहा था, मैं थक चुकी थी.

'तुम भी कभी न कभी तो ऐसे थके होगे बाली!' मैंने पानी गुटकने के बाद उसके चेहरे पर तैर रही हंसी देख कर कहा था.

फिर मेरा ध्यान कुछ साढ़े चार फ़ुट की गुफ़ा/सुरंग की तरफ़ गया था जहां घुटनों के बल बाली घुस गया था. उसके पीछे घुसी थी मैं और घुसते ही महसूस किया कि अंदर दूर तक था एक अनंत अंधकार, एक अजीब सी गंध और तीव्र से धीमी, धीमी से तीव्र होती हवा की मार्मिक चीख़ें. मेरे घुटनों को पथरीली धरा की सख़्ती महसूस हो रही थी. बाहर की ओर की दीवारों से कोयला निकाला जा चुका था पर कई स्थानों पर चट्टानों से कोयला अभी भी झांकता दिखायी दे रहा था. आगे जाकर गुफ़ा और संकरी हो गयी थी और छत और नीची. मेरा दम-सा घुटने लगा था.

'कहीं यह छत मेरे ऊपर ढह गयी तो?'

'वो अंदेशा तो हमेशा रहता है ना मैडम.'

'बाली तुम ज़्यादा आगे मत जाआ' मेरे स्वर में भय था. अंदर घुसते-घुसते अचानक मुझे लगा कि मैं और अंदर नहीं जा सकती थी, सांस लेना भी दूभर हो रहा था, दम घुटने लगा था.

'राघव...' मैं चीख़ी थी. पहली बारी अपनी ही आवाज़ भयावह लगी थी मुझे.

'ठीक तुम्हारे पीछे हूं. क्या हुआ?'

'मुझे बाहर निकलना है. ठीक नहीं लग रहा मुझे.'

'घबराएं नहीं मैडम, हम ज़्यादा अंदर नहीं हैं. आप दोनों धीरे-धीरे बाहर निकलें.'

मुझे लगा जैसे मैं कभी बाहर नहीं निकल पाऊंगी. गला सूखने-सा लगा था और एक तरह की मूर्छा मुझ पर छाने लगी थी. टॉर्च की रोशनी मंद होती जा रही थी और तभी शायद राघव ने मुझे खींचा था. जब होश आया तो खुली हवा और रोशनी, नथुनों और आंखों में भरी थी.

'आप ठीक हैं मैडम?'

'हां' मैंने ढीली पड़ी सांसों के बीच उत्तर दिया था.

मुझे लगा कि शायद वह मेरा मज़ाक उड़ायेगा पर वह चुप रहा. थोड़ा ठीक लगने के बाद भी भीतर की दहशत मुझमें बरकरार थी.

'कोई भी क्यूं कर उस नर्क में जाने को तैयार होगा बाली?'

'पैसे के लिए मैडम! जानती हैं दिन भर की दिहाड़ी कितनी है यहां? मात्र ३०० रुपये! माने आपके पांच डॉलर से भी कम और खदानों में काम करें तो उसका पांच गुना मिलता है.'

'क्या तुमने भी यह काम किया है?'

'आप उठ कर चल सकती हो तो हम ऊपर चलें. चलते-चलते अपनी कहानी सुनाता हूं.'

'ठीक हूं मैं अब. चलो!' हम वापस चल पड़े थे और बाली की कहानी हमारे साथ.

'शुरू में मुझे भी बहुत डर लगता था. बारह साल का था जब ये काम अपने बाबूजी और दो बड़े भाइयों के साथ शुरू किया था. हम लोग छः भाई बहन थे — मैं पांचवे नंबर पर.'

'बारह साल! स्कूल नहीं जाते थे क्या?'

'पढ़ने में कच्चा था. छठी कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ दी थी. इन खदानों में घुसने के लिए बच्चे और छोटे क़द-काठी के लोगों की ज़रूरत होती है, और पढ़ने और ख़ुद पैसा कमाने के बीच चुनना हो तो मैं पढ़ना क्यों चुनता

भला? हमारे घर के सब लोग खदानों में काम करते थे, बस मेरी छोटी बहन को छोड़कर. उसे पढ़ने का शौक़ था.'

'सब कुछ ठीक था तो फिर छोड़ क्यों दिया?'

वह एक खिन्न हंसी हंसा था — 'एक दुर्घटना ने छुड़वा दिया. तब मैं सोलह साल का था. शर्ली से नयी–नयी मुलाकात हुई थी उन दिनों. शर्ली, मेरी बीबी, तब मेरी छोटी बहन के साथ ही पढ़ती थी.' एक मासूम मुस्कान उसके होंठों पर उदित हुई थी.

'अच्छा टाइम था वो!' फिर उसने एक गहरी सांस भरी थी.

'एक रोज़ मैं खदान में था, तब पता चला कि कोयला ढोने वाली क्रेन की चेन टूट गयी है और जो शैफ़्ट था वो कुछ सौ फ़ीट के लगभग, भरभरा कर नीचे गिर गया था. वो पहली बार था कि मैंने मौत को इतने क़रीब से देखा था. बारह लोग मौक़े पर ही ख़त्म हो गये थे, मेरे बाबूजी और दोनों भाई भी शामिल थे उसमें.' कह कर वह चुप हो गया था और फिर उसने गला खंखारा था ताकि जो भी नमी आवाज़ में आयी थी उससे मुक्त हो सके.

'फिर...?'

'फिर क्या. अचानक घर का सबसे बड़ा मर्द बन गया था. हमें कुछ पिच्छत्तर हज़ार रुपये मिले थे बतौर मुआवज़ा ताकि हम अपने घर में हुई तीन मौतों को पीछे छोड़ ज़िंदगी की रफ़्तार में फिर शामिल हो सकें. और हम हो भी गये. पर तब मैंने यह तय कर लिया था कि खदानों के अंदर काम नहीं करूंगा मैं, न किसी अपने को करने दूंगा. काम की कमी नहीं थी, काम करनेवालों की कमी थी. हमें ज़रूरत उनकी थी जो पैसे के लिए मोहताज़ थे, जो ज़िंदगी एक-एक दिन जीने को विवश थे, जो आज के लिए इतने फिक्रमंद थे कि उन्हें कल के बारे में सोचने की न फ़ुर्सत थी, न वो सोचना चाहते थे. एक दोस्त के साथ मिलकर मैंने ऐसे मज़दूर खदानों के लिए जुटाने का धंधा खोल लिया.'

...तो बाली दलाल बन गया था! आसपास के इलाक़ों से, बॉर्डर पार बांग्लादेश से, काम की तलाश में भटकते ग़रीब, मज़बूर लोगों को रोज़गार के स्वप्नीले यथार्थ बेचने वाला दलाल! जहां शोषण की नग्न देहों को उसने परोपकार के वस्त्र पहनाकर, नैतिकता के साथ संधि कर ली थी. खदान के मालिकों को मज़दूर चाहिए थे, मज़दूरों को काम जो बिना किसी चूं चां के सिर्फ़ पैसा मुहैया करा सके और बाली इन दोनों के बीच का पुल था. वो पुल जो दोनों ओर से 'कट' लेकर अपना जीवनयापन करता था. फिर रैट होल मायनिंग पर प्रतिबंध लग गया और बाली का धंधा-पानी बंद हो गया था और इसीलिए इतना ग़ुस्सा!

'अब समझी, तुम्हारा इस रैट होल मायनिंग के प्रति इतना लगाव और उस पर लगे प्रतिबंध के प्रति आवेश.' वह एक खिन्न हंसी फिर हंसा था.

'आपको लगता है कि प्रतिबंध लगा और मैंने धंधा छोड़ दिया या और लोगों ने छोड़ दिया?'

मैं सकपका गयी थी. फिर कोहरा छंट गया मेरी नासमझी का, ''मायने तुम प्रतिबंध के बावजूद...'

'जी! प्रतिबंध के बावजूद सब जैसे चल रहा था, वह वैसे चलता जा रहा था. बेशर्म लोग यूं रुकें न रुकें, पर ख़ुद की आत्मा जब रोकती है तो रुकना पड़ता है. मैं भी, शायद न रुकता पर प्रतिबंध के कुछ चार महीने बाद, पंद्रह बच्चों ने ऐसी ही एक खदान में आयी बाढ़ में डूब कर दम तोड़ दिया. जब वे लोग खदान में कोयला काट रहे थे तो एक ने ग़लती से उस दीवार में कुल्हाड़ी चला दी, जो एक पुरानी खदान और इस नयी खदान के बीच खड़ी थी. उस खदान में वर्षों की बारिश का पानी भरा हुआ था. वह दीवार पहले से ही कमज़ोर थी. और मैडम, क़ैद पानी का मिज़ाज़ बहुत खूंखार होता है. एक छोटी-सी ग़लती और एक छोटे-से छेद से, उस क़ैद पानी को रिहाई होने का मौक़ा मिला और उन बच्चों को मिली मौत.'

मैं स्तब्ध हुई थी, पैर लड़खड़ाए थे. मैं दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गयी थी.

'कितनी उम्र थी बच्चों की?'

'तेरह से सत्तरह के बीच. सब बांग्लादेश के ग़रीब परिवारों के थे. यहां उनका कोई नहीं था जो घर न लौटने पर पूछताछ करता. बहुत बारिश हो रही थी उस दिन. हम लोगों को भी कुछ दिन बाद ही पता चला.'

'क्या? कुछ दिन बाद? माने कोई उनकी मदद करने वाला भी नहीं था.' एक भारीपन कुछ क्षणों के लिए हम तीनों पर सवार हो गया था जिसके रहते मैंने मरियल आवाज़ में पूछा था, 'फिर?'

'फिर क्या मैडम? बड़ी मछलियां इस तरह के हादसों को आपके शब्दों में 'कोलेटरल डैमेज़' कहती हैं. न उनकी ज़िंदगियों के बारे में किसी को पता था, न उनकी मौत कहीं

किसी काग़ज़ पर रज़िस्टर हुई. और ऐसी दुर्घटनाएं तो होती ही रहती हैं. ये जो बांध, पुल, बिल्डिंग खड़े हुए हैं हमारी प्रगति के द्योतक, सबने कभी न कभी अपनी-अपनी आहुतियां ली हैं.'

'सफ़ाई देने की कोशिश कर रहे हो या अपने धंधे की पैरवी कर रहे हो?'

'धंधे की पैरवी कर रहा होता तो धंधा छोड़ नहीं दिया होता.'

मुझे अजीब-सी वितृष्णा हुई. लाखों साल पुराने काले कोयले की दीवारों की, बर्फ़ से ठंडे पानी से भरी, अंधेरी सुरंग, और उसमें हाथ पैर मारते, मदद को चीख़ते–चिल्लाते, जीने को जूझते बच्चे. वे बच्चे जिनके न नाम दर्ज हुए, न मौत, न उन्होंने कोई विरासत ही छोड़ी. न उनकी ख्वाहिशों की किसी को ख़बर थी, न उनकी मज़बूरियों की मालूमात थी किसी को. वो अंततः जब इस धरा का भाग बने होंगे तब उसी धरती ने उन्हें शरण देते हुए, पुराने और नये समय को विरक्त भाव से मिलते देखा होगा और फिर सब स्थिर हो गया होगा. सिर्फ़ दीवारों से पानी के टकराने का स्वर गूंजता रहा होगा — पानी में उस सबके बाद भी स्वतंत्र होने की जुंबिश बाक़ी रही होगी. इन बच्चों को डिस्नीलैंड के बारे में तो पता भी नहीं होगा कि बच्चों के लिए 'संसार की सबसे ख़ुशहाल जगह' का टिकट उन चार बच्चों की दिन भर की आमदनी के बराबर था.

'उनके शवों को नहीं निकाला गया?'

'नहीं! खदान को सील कर दिया था.'

'किसी ने खोज ख़बर नहीं ली?'

'बोला गया कि यहां काम पर दिख नहीं रहे. कहीं और काम पकड़ लिया हो शायद!'

ऊपर अब वैभवी और राजन के सूक्ष्म से आकार दिखाई दे रहे थे. उन्होंने हाथ हिलाया पर मैं प्रत्युत्तर न दे सकी. राघव भी ख़ामोश था और बाली भी.

थोड़ी ही देर में हम वैभवी और राजन के पास थे, उस ख़ूबसूरत हरे पहाड़ पर जिसका अंतस बड़ी सारी सुरंगों से छलनी था. मैंने अनमनस्क बाली को देखा, जैसे बाली भी वही जीता जागता पहाड़ था.

लौटते हुए मैं चुप थी. बाली बीच-बीच में चिंतित और चोर निग़ाहों से रियर व्यू मिरर से मुझ पर नज़र रखे हुए था, जब राघव अंग्रेज़ी में वैभवी और राजन को पूरा क़िस्सा सुना रहा था.

मुझे बाली से चिढ़ हो रही थी. रास्ते में हम एक रेस्तरां पर रुके. वह पोहे की प्लेट और चाय लेकर आया, ''मैडम मैंने पूरे मन और ईमानदारी से आपको मेघालय दिखाने की कोशिश की. अपने हिस्से के सुख–दुःख बांटे. यदि कहीं कोई ग़लती हो गयी हो या ठेस पहुंची हो तो क्षमा कर दीजिएगा. आपको ख़ुश करने के लिए मैंने अपनी कंपनी के नियम भी तोड़े हैं.'

'उसकी तो तुम्हें आदत है बाली,' मेरा क्रोध आस्मां छू रहा था. मुझे इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा था कि उसने मेरे लिए क्या-क्या किया था. मेरा मन उसे कटघरे में रखकर, उसे उसके ही सच के लिए सज़ा देना चाहता था, 'बताओ, वो बच्चे जो डूब गये थे, उन्हें तुम्हारी कंपनी के ज़रिये ही वहां नौकरी पर रखा था ना?'

बाली ने पोहा और चाय मेज़ पर रखा और बिना कोई उत्तर दिये वहां से चला गया था. एक पेड़ के नीचे जाकर उसने सिगरेट सुलगा ली थी, मगर होंठों से लगाये बिना, ज़मीन पर फेंक कर अपने जूते से कुचल दी थी. फिर अपने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ कर वह वहां पड़ी चट्टान पर बैठ गया था. मुझे उस पर दया आने लगी थी. उसका जीवन, उसका संघर्ष, उसकी बीमार पत्नी, बच्चे और उसका कचोटता ज़मीर.

हमारी यात्रा की समाप्ति पर हमने उसे तय की राशि से तिगुने रुपये देने चाहे.

2839, Norcest Drive,
San Jose, CA, USA.
ई-मेल : aanshu@udgam.com

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

सुरंग भरे पहाड़

अंशु जौहरी

(...पृष्ठ १४ से आगे)

...हमारी यात्रा की समाप्ति पर हमने उसे तय राशि से तिगुने रुपये देने चाहे तो उसने विनम्रतापूर्वक लेने से इंकार कर दिया, ''आपकी इस दया का बहुत शुक्रिया यह मेरे काम ज़रूर आयेगा, पर मैं एक अकेला तो नहीं हूं यहां पर. मेरे जैसे कितने सारे लोग हैं जो अपने ही बुने जालों में अटके हुए, उससे बाहर निकलना चाहते हैं पर फंसे हुए हैं और कहीं जाने का रास्ता ही नहीं सूझता. आप लोग बहुत अच्छे लोग हो. मैं आपकी मदद, दया का बहुत सम्मान करता हूं. यह मेरा कार्ड रखिए, इस पर फ़ोन नंबर है मेरा. कभी फ़ोन करेंगे मुझे, तो बहुत अच्छा लगेगा कि किसी ने अमेरिका से फ़ोन किया मुझे. अपनी स्मृतियों में स्थान दीजिएगा. अगर मेरे हाथ में होता तो मैं यह सब कब का ख़त्म कर देता पर मैं छोटा-सा कीड़ा, केवल ज़ीसिस से प्रार्थना कर सकता हूं.'' कहते-कहते वह भाव विह्वल हो गया था. फिर थोड़ा हंसकर उसने कहा, ''आप लोगों के साथ एक सैल्फ़ी हो जाये?''

यह दो साल पहले की बात थी और अब रैट होल-मायनिंग पर लगे प्रतिबंध को पांच साल बीत गये हैं और अचानक फिर हर अख़बार, हर न्यूज़ चैनल इस ख़बर से गर्म है - मेघालय में प्रतिबंधित रैट-होल माइन में अचानक आयी पानी की बाढ़ में १५ मायनर फंसे हुए हैं. यह खदान इतनी नीचे की ओर थी कि कोई यंत्र उपलब्ध नहीं था जिससे बाढ़ के पानी को उलीचकर उन मज़दूरों को बाहर निकाला जा सके. सब कुछ चर्चा में था, अवैध मायनिंग, राजनैतिक स्वार्थ और माइन मालिकों का गठबंधन, सरकारी तबके का भ्रष्टाचार, रक्षा प्रबंधों में ढीली-ढाली और निष्क्रीय प्रणालियां. लोगों को पता भी नहीं था कि कितने लोग उसके अंदर फंसे हैं - १२, १४, १६, १८, जैसे बात ज़िंदगियों की नहीं, इस बात की हो रही थी कि आधा किलो में कितने बेर चढ़ेंगे? ...दो-चार इधर-उधर हो भी गये तो क्या फ़र्क पड़ता है.

मेरी सोच में बाली मुखरित हुआ, उसकी बीमार पत्नी, फिर हमारी मेघालय की यात्रा और उस दमघोटू खदान का झनझनाता अनुभव. मैं उसे फ़ोन करना भूल ही गयी थी. उसका नंबर ढूंढ़ निकाला मैंने. जब डायल किया तो अचीन्हे हर्ष का अनुभव हुआ. ''क्या कहेगा वह शायद भूल ही गया हो!''

दूसरी ओर फ़ोन पर किसी लड़की की मिठास युक्त आवाज़ थी.

''हैलो!''

''हैलो! यह बाली का नंबर है?''

''जी! आप कौन?''

''मेरा नाम मनस्वनी है. मैं कैलिफ़ोर्निया में रहती हूं. कुछ दो साल पहले जब हम मेघालय आये थे तो बाली हमारा टूर गाइड था.''

''तो आज कैसे फ़ोन किया मैडम?''

''बस, ऐसे ही. आप कौन बोल रही हैं?''

''मैं सोफ़िया हूं, मैडम. उनकी बेटी...''

''अरे वाह! बाली है क्या? और तुम्हारी मां की तबियत कैसी है?''

''मां को गुज़रे साल से ऊपर हो गया मैडम.''

''और पापा!'' आगे वह सुबकने लगी थी.

''क्या हुआ सब ठीक तो है?''

''मैडम आपको शायद पता न हो. पर यहां एक माइन में पानी भर गया है. आज छः दिन होने को आये. पापा भी उसी में हैं.'' वह रुक-रुक कर रोते-रोते कह रही थी.

''पर बाली ने तो वह सब छोड़ दिया था ना?''

''मां की बीमारी के इलाज़ में बहुत लोन लिया था मैडम. फिर हम लोगों की फ़ीस भी थी. पापा ने कहा था कि वो एक आख़िरी बार जा रहे हैं. जाते-जाते बोले थे एक बार हंस कर दिखाओ कि इसके बाद हमारे दिन फिर जायेंगे.'' कहते-कहते वह और जोर से रो पड़ी थी. कुछ और देर ढांढ़स बंधाकर मैंने फ़ोन रख दिया. एक गहन उदासी मेघों की तरह परत दर पर मुझ पर चढ़ती जा रही थी.

मुझे मालूम है कि बाली कभी बाहर नहीं आयेगा. पर इस दुर्घटना को मीडिया का सहारा मिल चुका है. मरने वालों के नाम भले ही कोई न जानता हो पर उन्हें मुआवज़ा तो मिलेगा.

''मेरे बच्चे माइन में काम नहीं करेंगे.'' बाली का दृढ़ स्वर मेरे कानों में गूंजता है, फिर विगत के नेपथ्य से पूछता है, ''मैडम आपने कभी फ़ोन नहीं किया?''

मुझे पहले फ़ोन करना चाहिए था.

बिदा

मालती जोशी

पद्मश्री मालती जोशी

कथाबिंब की
शुभचिंतक व
नियमित लेखिका

अनुराधा ने नाश्ते की टेबल से उठते हुए कहा — 'सीमा! मैं शाम के खाने पर नहीं

हूं. और घर लौटने में भी शायद देर हो.'

'कहीं जा रही हैं?'

'नहीं, ऑफ़िस में ही फ़ेयरवेल पार्टी है.'

'किसकी?'

'मेरी.'

'आपका ट्रान्सफ़र हो गया है क्या?'

'नहीं, मैं नौकरी छोड़ रही हूं.'

समीर अख़बार में सिर डाले बैठा था. एकदम चौंक पड़ा.

'नौकरी छोड़ रही हो? किस ख़ुशी में?'

'मैं शादी कर रही हूं.' उसने शांत स्वर में कहा.

समीर के हाथ से अख़बार छूट गया. बोला — 'इस बुढ़ापे में तुम्हें यह क्या सूझी?'

पर उसकी बात पूरी होने से पहले ही सीमा उठकर ननद के गले से लग गयी थी — 'आप शादी कर रही हैं दीदी. वाट ए प्लेज़ेंट सरप्राइज़. इस ख़बर का कब से इंतज़ार था. कौन है वह ख़ुशनसीब.'

अनुराधा ने पर्स से एक कार्ड निकाल कर उसे थमा दिया.

'वाह! बाक़ायदा कार्ड वग़ैरह छपवाकर शादी की जा रही हैं. समीर ने तंज़ किया.

'क्यों. शादी में कार्ड नहीं छपते क्या? कुछ भी बोले जा रहे हैं.' सीमा ने कहा और अधीरता से कार्ड निकाल कर पढ़ा — 'अनुराधा एंड प्रदीप इनवाइट यू, वाह — आप लोगों ने अपने नाम से निमंत्रण छपवाया? सो स्वीट, प्रदीप मतलब...'

'प्रदीप मेहता.'

'मैं वही सोच रही थी आपके बॉस हैं न फॅन्टेस्टिक.'

वह आगे पढ़ती गयी. 'यह क्या? दो को शादी रखी है आपने? तीस तो आज ही हो गयी? इकत्तीस और एक. बस दो ही दिन बीच में हैं. इतनी जल्दी कैसे क्या होगा बताइए?

'कुछ करना ही नहीं है.'

'सीमा ठीक तो कह रही है. समीर गुर्राया तुम पहले से नहीं बता सकती थीं?'

'पहले से बताती भी तो तुम्हारा रिएक्शन तो यही होता न!'

'उनकी बात पर ध्यान मत दीजिए दीदी. मुझे यह बताइए कि...'

'सीमा, मैंने कहा न कि कुछ नहीं करना है. बुढ़ापे की शादी है.'

'शादी, शादी होती है दीदी कैसे भी हो. थोड़ी धूमधाम तो होनी चाहिए.'

'थोड़ी धूमधाम हो रही है. मेरी कलीग है न पूनम. रविवार को उसने संगीत और मेंहदी का कार्यक्रम रखा है. बाद में डिनर भी होगा. तुम और शमा ज़रूर आना.'

– 'आना मतलब.'

'मैं इतवार की सुबह ही पूनम के यहां शिफ़्ट हो जाऊंगी. दूसरे दिन वहीं से मंदिर जाऊंगी.'

'मंदिर क्यों?'

'शादी आर्य समाज मंदिर में होगी न. कार्ड में वह नहीं लिखा है. पर तुम लोगों को आना है. शादी में भी और रिसेप्शन में भी. अच्छा मैं चलूं. देर हो रही है. आज नौकरी का आख़िरी दिन है. अपना रिकॉर्ड ख़राब करना नहीं चाहती.

□

सीमा बंद दरवाज़े की तरफ़ कुछ देर अपलक देखती रही. फिर एकदम पति पर बरस पड़ी — 'यह तो साफ़ नज़र आ रहा था कि आपको ख़ुशी नहीं हुई है. पर आदमी दिखावा तो कर सकता है.'

'क्या ज़रूरत थी. मेरे हिस्से की ख़ुशी भी तो तुमने ज़ाहिर कर दी. वाह! क्या गद्–गद् हुई जा रही थीं.

'ख़ुशी की बात हो तो लोग ख़ुश होते ही हैं. सब लोग आप जैसे नहीं होते.'

'उस बुढ़ऊ से शादी कर रही है उसमें कौन-सी ख़ुशी की बात है. पता है उसके कॉलेज़ गोइंग बेटे हैं दो.'

'दीदी की अगर समय से शादी हो गयी होती तो उनके भी इतने बड़े बच्चे होते. हमारा शौनक ही अगले वर्ष कॉलेज़ में होगा. दीदी के बच्चे तो उससे बड़े ही होते न! जो कुछ भी हो इतने दिनों बाद उनके जीवन में एक सुख की बयार आयी है. आप उन्हें बधाई नहीं दे सकते थे? उल्टे ताना मारते रहे. उल्टी-सीधी बातें करते रहे. मुझे इतनी शर्म आ रही थी कि क्या बताऊं?'

'मैडम! ये जो तुम बयार वग़ैरह कह रही हो न, आंधी है आंधी. तुम्हारे सारे सपनों को उड़ाकर ले जायेगी.'

'कौन से सपने?'

'यही कि बेटी को डॉक्टर बनाऊंगी, उसके लिए डॉक्टर दूल्हा लाऊंगी. बेटे को इंज़ीनियर बनाऊंगी. उसे अमरीका भेजूंगी. सारे अरमान धरे रह जायेंगे.'

'देखिए मैंने जो भी सपने देखे थे अपने पति के भरोसे देखे थे. दीदी के भरोसे नहीं. अब अगर मेरे पति की हैसियत नहीं है तो न सही. ज़रूरी थोड़े ही है कि दुनिया का हर बच्चा डॉक्टर, इंज़ीनियर बने. फिर मेरे पास एक विकल्प और भी है. आपके यहां तो परंपरा है कि बहनें, भाई को पढ़ाती हैं. शमा बारहवीं के बाद कोई जॉब कर लेगी. हां, आपके घर की दूसरी परंपरा मैं नहीं निभाऊंगी. मैं अपनी बेटी को अनब्याही नहीं रखूंगी. शौनक की जॉब लगते ही उसकी शादी कर दूंगी.'

'अब ताना कौन मार रहा है?'

'मैं ताना नहीं दे रही हक़ीक़त बयान कर रही हूं. मुझे आप लोगों पर आश्चर्य होता है. सबसे ज़्यादा मां जी पर.'

'मां ने क्या किया?'

'बेटियों की चिंता सबसे ज़्यादा मां लोगों को ही होती है. पर मां जी कितनी कूल थीं. हम लोगों की शादी हुई तब दीदी मुश्किल से तीस-बत्तीस की रही होंगी. पर मां जी हमेशा कहतीं — 'अब इस उम्र में वह क्या शादी करेगी?'

'दरअसल मां बहुत इनसिक्योर फ़ील कर रही थीं.'

'क्यों?'

'दादा भाई पढ़ लिख कर अमेरिका चले गये. एक बार बस शादी करने भर को आये थे. उसके बाद घर का मुंह नहीं देखा. कभी भारत आते भी हैं तो ससुराल में दर्शन देकर लौट जाते हैं. मां को डर लगा रहता था कि कहीं यह भी चला गया तो मेरा क्या होगा? मैं किसके पास रहूंगी.'

'पर आप तो कहीं जाने वाले नहीं थे. तो आप ही

पहल करते. दीदी की शादी करवाते.'

'शादी कोई मज़ाक है. बोरी भर रुपया लगता है उसमें? बड़े वहां ऐश कर रहे हैं. मैं अकेला बलि का बकरा क्यों बनूं.'

'बलि का बकरा तो बेचारी दीदी बनी हैं. अपने स्वार्थ के लिए आप सबने उनके सपने गिरवीं रख दिये थे. अब जब वो उठाने जा रही हैं तो आपको आग लग रही है. इतने स्वार्थी लोग मैंने कभी नहीं देखे?'

'क्या स्वार्थ देखा तुमने मेरा?'

'आपको एक पर्मानेंट कमाऊ मेंबर मिल गया था. उसके भरोसे आप अपने बिज़िनेस का खेल खेलते रहे. कभी मावस कभी पूनों — गृहस्थी ऐसे नहीं चलती. सच बताऊं, मुझे यह घर, यह गृहस्थी कभी अपनी लगी है? नहीं. इस घर की हर चीज़ दीदी के पैसों से, दीदी की पसंद से है. फिर चाहे वो टीवी हो, फ्रिज़ हो, गोदरेज़ अलमारी हो, सोफ़ासेट हो. दरवाज़ों के परदे तक दीदी लाती हैं.

मुझे लगता है जैसे मैं उधार की गृहस्थी कर रही हूं. यहीं तक बात होती तब भी ग़मीनत थी. आप बच्चों को भी उनके पीछे लगा देते हो. छोटे थे तब तक ठीक था. खिलौने और टॉफ़ी से बात बन जाती थी. पर अब बच्चे बड़े हो गये हैं. उनकी ज़रूरतें बढ़ गयी हैं. हर बात के लिए बुआ का मुंह देखना अब उन्हें अच्छा नहीं लगता. वे संकोच करते हैं तो आप कह देते हैं — 'दीदी ज़रा देख लेना लोगों को क्या चाहिए.'

'पिछले महीने की बात है. शौनक को ब्लेज़र चाहिए था उसने आपसे कहा, आपने उसकी फ़रमाइश दीदी तक पहुंचा दी. इस पर बेटे ने क्या कहा जानते हैं?'

'क्या कहा?'

'वह बोला कि आप लोगों ने हम दोनों को बुआ के भरोसे पैदा किया है?'

'क्या ? उस नालायक की यह मजाल?'

'मैंने भी ग़ुस्से में आकर उसे तड़ से एक चांटा जड़ दिया था. बाद में दिन भर रोती रही थी मैं. बच्चे ने कुछ ग़लत तो नहीं कहा था.'

'बच्चों के दिमाग़ में यह फितूर आता कहां से है?'

'इसे आप नहीं समझेंगे. ख़ैर चलूं अब रसोई देखूं. आपकी तो सारी भूख-प्यास आज ग़ायब हो गयी होगी. पर बच्चे बेचारे स्कूल से भूखे-प्यासे लौटेंगे.'

□

ठीक डेढ़ बजे दोनों बच्चे घर में दाख़िल हुए. आते ही घर में हंगामा शुरू हो गया. रोज़ की तरह उन्होंने बस्ते और जूते इधर-उधर फेंके. फिर सीमा ने डांट लगाते हुए ख़ुद ही उठाये. यूनिफ़ॉर्म बदलने के लिए भी दस बार कहा गया तब बदले गये. फिर मुंह हाथ धोने के लिए एक बार और डांट लगानी पड़ी. सब लोग खाने की मेज़ पर आकर बैठे तब जाकर शांति स्थापित हुई.

'मम्मी, आज त्यौहार है कोई?' शमा ने पूछा — 'आपने हलुआ बनाया है.'

'आज बहुत बड़ा त्यौहार है बेटा.'

'कौन-सा.'

'बुआ की शादी हो रही है.'

'वाऊ', शमा ने किलकते हुए कहा — 'किससे हो रही है.'

'प्रदीप मेहता — द बॉस.'

'वाऊ', शमा ने फिर किलकारी भरी तो समीर हत्थे से उखड़ गया. 'ये क्या वाऊ, वाऊ लगा रखा है?'

'दिस इज़ ज़स्ट एन एक्सप्रेशन पापा.' शौनक ने कहा — 'ख़ुशी ज़ाहिर करने का एक तरीक़ा है.'

'तुम्हें बहुत ख़ुशी हो रही है?'

'क्यों? आपको नहीं हो रही?' बच्चों ने एक साथ पूछा. सीमा ने तुरंत स्थिति सम्हालते हुए कहा — 'तुम लोग पहले चुपचाप खाना खा लो. बहस-बाज़ी बाद में कर लेना.'

'ममा मीठा आपको शाम को बनाना था. तब बुआ भी खाने पर होतीं.'

'बुआ शाम को घर पर नहीं हैं बेटा. आज उनकी फ़ेयरवेल पार्टी है.'

'क्यों?'

'बुआ नौकरी छोड़ रही हैं.'

वो... शमा फिर वाऊ कहने को थी पर उसने अपने आपको रोक लिया — 'मतलब बुआ अब फ़ुलटाइम हाउसवाइफ़ बन जायेंगी. हाऊ एक्सायटिंग.'

बच्चों की वह निष्छल ख़ुशी और निर्मल आनंद देखकर सीमा को बहुत अच्छा लगा.

रात अनुराधा देर से लौटी पर बच्चे उसकी प्रतीक्षा में जगे हुए थे. आते ही बुआ से लिपट गये. उनका वह

निष्कपट प्रेम देखकर सीमा की आंखें भर आयीं. उसने प्रार्थना की — हे ईश्वर. मेरे बच्चे ऐसे ही निश्छल निष्कलुष बने रहें. स्वार्थ की गंध भी उन तक न आ पाये.

सुबह अनुराधा ने ऐलान किया — 'सीमा, आज हम तीनों खाने पर नहीं हैं. मैं बच्चों को ट्रीट दे रही हूं.'

'हमने क्या पाप किया है?'

'तुम्हारे पतिदेव हंडे-सा मुंह फुलाकर बैठे हैं. उन्हें छोड़कर चल सकती हो तो स्वागत है.'

'नहीं दीदी, मैं तो मज़ाक कर रही थी. मुझे आज बहुत काम है.'

बच्चों के जाते ही सीमा तैयार हुई. समीर से कहा — 'खाना मेज़ पर रखा है. समय से खा लेना. बाहर जाना हो तो चले जाना. मेरे पास चाबी है.'

'तुम कहां जा रही हो?'

सीमा ने जवाब देने की ज़रूरत नहीं समझी.

बच्चे जब घर लौटे तो मां घर में नहीं थी. उन्हें बड़ी निराशा हुई. वे मां को अपनी शॉपिंग दिखाना चाहते थे. बुआ ने दोनों को पार्टी में पहनने के लिए बड़ी सुंदर ड्रेसैज़ दिलवायी थीं. मां की अनुपस्थिति से सारे उत्साह पर पानी फिर गया. पापा घर में थे पर कब से उनका मूड कुछ अजीब-सा चल रहा था. हिम्मत नहीं हुई.

सीमा काफ़ी देर से लौटी. वह भी शॉपिंग करके आयी थी. पर उसने अपनी शॉपिंग किसी को दिखाई नहीं. सीधे जाकर अल्मारी में रख दी. फिर शमा को आवाज़ दी. दरवाज़े पर बंदनवार लगाने के लिए कहा — 'आज तो आर्टीफीशियल ले आयी हूं. कल चौधरी साहब के घर से आम के पत्ते ले आऊंगी.'

फिर शौनक की मदद से दिवाली पर लगाई जाने वाली झालर (बिजली की) सब दूर लगायी. शाम को घर एकदम जगमगा उठा. शाम को अड़ोसी-पड़ोसी पूछने आ गये कि भई, किस बात का जश्न हो रहा है? भीतर बैठे अनुराधा और समीर को तब तक पता ही नहीं था कि बाहर क्या हो रहा है.

सीमा ने कहा — 'दीदी, चार पांच स्पेयर कार्ड्स हों तो मोहल्ले में बांट दूंगी.'

□

सुबह अनुराधा ने दो बड़े सूटकेसेज़ ड्रांइग रूम में लाकर रख दिये. बोली — 'दस बजे पूनम मुझे पिकअप करने आयेगी.'

'दीदी! अपनी सहेली से कहना नाश्ता यहीं करेगी. ओके,' कहते हुए अनुराधा कमरे में चली गयी. समीर ने कहा — 'ये कितना सामान ले जा रही हैं?'

'पैतालीस साल की उम्र में क्या उनके पास इतना भी सामान नहीं होगा? ख़ासकर तब जब वे हमेशा के लिए जा रही हैं, और एक बात याद रखिए. अगर वे अपना सारा सामान ले जाना चाहेंगी तो आपका घर नंगा हो जायेगा.'

समीर चुप हो गया.

नाश्ते का शाही सरंजाम था. गुलाब जामुन, समोसे और पोहा. सब कुछ सीमा ने घर पर बनाया था. सुबह पांच बजे से उठी हुई थी वह. अनुराधा के लिए उसने चांदी की प्लेट निकाली थी. उसके आसपास फूलों की रंगोली बनायी थी. देखकर सबका जी ख़ुश हो गया.

नाश्ते के बाद वह शमा से बोली — 'गुड़िया, चाय बनी रखी है. तू सबको सर्व कर दे. तब तक मैं आ रही हूं. दीदी मेरे साथ आइए तो.'

वह अनुराधा को पूजा के कमरे में ले गयी. उसकी सास के ज़माने में इस कमरे की रौनक कुछ और थी. अब तो महज स्टोर रूम बनकर रह गया है. ठाकुरजी बिचारे चुपचाप एक चौकी पर विराजमान हैं.

अनुराधा को एक चौकी पर बिठाते हुए सीमा बोली — 'दीदी कन्या की बिदाई कैसे होती है यह आपके घर में देखने का सौभाग्य नहीं मिला. मैंने अपने घर में जो देखा है, सीखा है, वह कर रही हूं.'

उसने अनुराधा के माथे पर रोली, चावल का टीका किया. फिर उसकी गोद में एक सुंदर-सी थैली रखकर उसमें चावल, नारियल, सुपारी, मेवे-मखानों से उसकी गोद भर दी. फिर उसने थैली से निकालकर एक डिब्बा उसकी गोद में रख दिया.

'अब ये क्या है?'

'खोलकर देखिए.' अनुराधा ने खोलकर देखा, बनारसी साड़ी थी. आप शादी में यही पहनेंगी.

'बाप रे! यह झंतर-मंतर मैं पहनूंगी?'

'बिल्कुल पहनेंगी. अर्जेंट में ब्लाउज़ सिलवाकर लायी हूं.'

'बस हो गया कि अभी कुछ और है न?'

'है, न.' कहते हुए उसने लाल मखमली डिब्बे में से

दो कड़े निकाले — 'सीमा, तू पागल तो नहीं हो गयी? एक दिन में कितने पैसे फेंक डाले.'

'इतने पैसे मेरे पास हैं भी? ये आपकी मां के कड़े हैं. इस घर से आप खाली हाथ नहीं जायेंगी. मां का आशीर्वाद लेकर जायेंगी.

'मुझे रुलाकर ही मानोगी क्या?'

'थोड़ा-सा रो लीजिए. शगुन हो जायेगा.'

बाहर पूनम अधीर हो रही थी. 'शमा देख तो तेरी बुआ कहां ग़ायब हो गयी हैं. ग्यारह बजे की पार्लर में अपाइंटमेंट में है.'

'बुआ पार्लर जायेंगी?'

'क्यों नहीं जायेंगी. सब दुलहनें जाती हैं.'

शमा बुआ को बुलाने पूजा घर में गयी. वहां अजीब दृश्य था. दोनों ननद भौजाई एक दूसरे के गले में बांहे डाले खड़ी थीं और जार जार रो रही थीं.'

शमा को भी रुलाई आ गयी और वह उन दोनों से लिपट कर रो पड़ी.

११९, मदनलाल ब्लॉक, एशियाड विलेज़, सिरीफ़ोर्ट ऑडिटोरियम के पास, नयी दिल्ली-११००४९
मो.९९९३०६८००७

लघुकथा

सोच

डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा

गीता दीदी मेरी बड़ी बहन समान थीं. जब जीजा जी परलोक सिधार गये तब मैं विदेश में था. अगले एक साल स्वदेश नहीं आ पाया. अब जैसे ही आया तो सीधे दीदी से मिलने पहुंच गया.

दीदी घर पर नहीं मिली. मालूम पड़ा कि स्कूल गयी हैं. सो स्कूल पहुंच गया. दीदी के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी. उल्टा मुस्कराकर मेरा स्वागत किया. फिर समझाया – 'रोने से तेरे जीजा जी वापस नहीं आयेंगे. उल्टा, मुझे दुखी देख कर स्वयं दुखी हो जायेंगे. सो चेहरे पर मुस्कराहट ला कर मैंने अपने को व्यस्त कर लिया है. स्कूल को ऊंचाइयों पर ले जाऊंगी. मेरी कोई औलाद नहीं है. सो स्कूल के बच्चों को अपनी औलाद मान कर मैं अपना धर्म भी निभा लूंगी.'

२७, ललितपुर कॉलोनी, डॉ. पी. एन. लाहा मार्ग, ग्वालियर (म. प्र.)-४७४००९
मो. : ९७५३६९८२४०

ग़ज़ल

मनाज़िर हसन 'शाहीन'

उसकी तलवार पे क्यों दोष उछाला जाये,
अपने ही ज़िस्म को फ़ौलाद में ढाला जाये.

मां के हाथों में हों दो रोटियां बच्चों के लिए,
उनके बहलाने को कंकड़ न उबाला जाये.

जिनके हाथों में है दुनिया को सजाने का हुनर,
उनके हिस्से में भी 'सोने का निवाला' जाये.

लबे-साहिल कोई मोती नहीं मिलने वाला,
अब ज़रा मिल के समुंदर को खंगाला जाये.

बाज़ ख़ुशफहमियां होती हैं बला-ए-जां भी,
आस्तीं में तो कोई सांप न पाला जाये.

कुछ अगर लेगा तो बदले में दुआएं देगा,
अपने दरवाज़े से साइल को न टाला जाये.

जलता दीपक ज़रा दहलीज़ पे रखिए 'शाहीन',
सिर्फ़ घर में नहीं, बाहर भी उजाला जाये.

मकान नं.१६१, मुहल्ला : मिल्लत कॉलोनी, गया-८२३००१ (बिहार)
मो.९६६१२१४१११

लघुकथा

'नन्ही गोरैय्या'

✍ डॉ. सीमा शाहजी

हमारे आंगन में नन्ही गोरैय्या रोज़ दाना चुगने आती है. साथ में उसकी मां भी. मां जब आटा गूंथती हैं तो परात में आटे पर भी चोंच मारती है. उसकी ध्वनि और फुर्र से फुदकने की अदा तो हम बच्चों की जान है.

नन्ही गोरैय्या एक दिन अपनी मां से बतिया रही थी — 'मां!'

'हां बेटी'.

'इस घर में बच्चे, बड़े सभी कितने अच्छे हैं. रोज़-रोज़ आंगन में दाना चुग्गा रखते हैं, एक सकोरे में पानी भी. जब हम फुदकते हैं तब बच्चे भी फुदकने लगते हैं, घर में कभी सभी लोग बाहर खाना खाने जाते हैं तब भी यह क्रम टूटता नहीं बल्कि आंगन में गुंथे आटे की कुछ गोलियां भी इस घर की गृहलक्ष्मी रख देती है. हमारी चोंच से आटा चुगना इन लोगों को अच्छा लगता है.

लेकिन मां जब भी घर का कोई सदस्य अपने पास आता है, तो आप चिल्लाते हुए... उड़ जा बेटी.... भाग जा बेटी... मेरी नन्ही गोरैय्या घोंसले में चली जा... कह कर उड़ा देती हो. ऐसा क्यूं-मां...?'

'बेटी आज के ज़माने में किसी की नियत कब ख़राब हो जाये कुछ कह नहीं सकते, इसलिए मेरी यह नसीहत हमेशा याद रखना कि अपने जीवन को सुरक्षित रखने और आगे बढ़ने के लिए कभी भी अपने सगे पर भी भरोसा मत करना, ज़माना बहुत ख़राब है.'

इतने में नन्ही गोरैय्या ने देखा कि गृहस्वामी एक सुंदर पिंजरा आंगन में टांग रहे थे और गृहलक्ष्मी व बच्चों से बतिया रहे थे. उस नन्ही पंछी ने उनका खिलखिलाना और अन्य हाव-भाव से समझ लिया था कि उनकी मंशा नन्ही जान को पिंजरे में क़ैद करने की है.

यह जानकर गोरैय्या वहां से उड़ चली. मां और गोरैय्या ने किसी दूसरे आंगन में अपना घोंसला बुनना शुरू कर दिया ताकि वे आज़ादी में भी सुरक्षा का वितान ओढ़े रहें.

वाह! चुलबुल-नटखट गोरैय्या तुम गुलाम होने से बच गयीं. बड़ों की नसीहत से पिंजड़े का आंगन छोड़ आज़ादी की सांस लेकर सुरक्षित आंगन में फुदकने लगीं. हवा भी गुनगुनाने लगी. मां के आगोश में नन्ही गोरैय्या खिलखिलाने लगी.

✉ ३२५, म.गा.मार्ग, थांदला, जि. झाबुआ (म. प्र.)
मो. : ९१६५३८७७७१

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

ई-मेल : kathabimb@gmail.com

पेइंग गेस्ट

राजगोपाल सिंह वर्मा

'आप हॉस्टल में क्यों ट्राई नहीं करती, पेइंग गेस्ट के बजाय!' नयी दिल्ली की पॉश कॉलोनी सफ़दरजंग एन्क्लेव के बी-ब्लॉक की कोठी की उस लगभग सत्तर साल की मालकिन ने जब ऊपर से नीचे तक देखते हुए इशिता को 'इंटरोगेट' किया, तो उसने वही जवाब दिया, जो न जाने कितनों को अब तक दिया था. पर वह यह भी जानती थी कि उसके प्रति उपजे संदेहों को दूर करना उसके वश में नहीं है. एक तो उसकी अपनी कश्मीरी नैसर्गिक ख़ूबसूरती, जो उसके चेहरे पर भरपूर उतर आयी थी, तमाम विपरीत परिस्थितियों के बीच भी, और उस पर दिल दहलाने वाले आतंकी कारनामों से कश्मीर का जुड़ा होना! सिर्फ़ ये कारण थे, उसे किसी घर में अस्थायी पनाह न मिलने के.

दो-चार और बातें करने और उसके पिता की शहादत की जानकारी के बाद तो वह महिला बेचैन होकर उठ खड़ी हुई. यानी, अब आप जा सकती हैं. यह स्वाभाविक भी था. न जाने इस आतंकवाद के हाथ कब उन तक भी आ पहुंचें. उनका डरना भी बनता था.

पर इशिता नहीं समझती थी कि अब किस और तरीक़े से समझाया जाये कि जे. एन. यू. का सेशन कब का आरंभ हो चुका था, और स्कूल ऑफ़ फिज़िकल साइंसेस के कैमिस्ट्री विभाग में कश्मीरी माइग्रेंट कोटे से उसका एडमिशन इतनी देर से हुआ कि हॉस्टल में कोई सीट ही नहीं बची. फिर इशिता का आकर्षक व्यक्तित्व, औसत से ऊंचा कद, कश्मीरी ख़ूबसूरती लिये सुर्ख चेहरा, सुंदर नयन-नक़्श, घने लंबे स्ट्रेट बाल जो थोड़ा भूरापन लिये हुए थे, वे कुछ लोगों के लिए शायद संशय और ईर्ष्या का कारण अधिक बनते थे, प्रशंसा का कम.

अब तक चार जगह से 'न' सुनने के बाद भी इशिता ने हिम्मत नहीं हारी थी. 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' के आज के एडिशन के क्लासिफाइड एड्स के कॉलम में अभी पेइंग गेस्ट की कुछ जगहें शेष थीं, जिन पर भाग्य आजमाया जा

परिचय

शिक्षा : पत्रकारिता तथा इतिहास में स्नातकोत्तर. केंद्र एवं उत्तर प्रदेश सरकार में विभिन्न मंत्रालयों में, प्रकाशन, प्रचार और जनसंपर्क के क्षेत्र में जिम्मेदार पदों पर कार्य करने का अनुभव.
पांच वर्ष तक प्रदेश सरकार की साहित्यिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' का स्वतंत्र संपादन. इससे पूर्व उद्योग मंत्रालय तथा स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार में भी पत्रिकाओं और अन्य प्रकाशनों के संपादन का अनुभव.
वर्तमान में आगरा, उत्तर प्रदेश में निवासरत. विभिन्न राष्ट्रीय समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, आकाशवाणी और डिज़िटल मीडिया में हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा में लेखन, प्रकाशन तथा संपादन का वृहद अनुभव. कविता, कहानी, यात्रा-वृत्तांत तथा ऐतिहासिक व अन्य विविध विषयों पर लेखन के साथ-साथ फ़ोटोग्राफ़ी में भी रुचि.

सकता था.

वह कश्मीर के उस इलाके से आयी थी जहां आतंकवाद का बोल-बाला था. उसके पिता आतंक की राह में शहीद हो गये थे. आतंकवाद से सहानुभूति रखनेवाले लोग उनकी मौत को गद्दारों को दी जानेवाली सज़ा कहते थे. यह सिर्फ़ चंद लोग जानते थे कि आतंकवादियों को हथियारों की फंडिंग के लिए धनराशि देने से साफ़ इन्कार उनकी हत्या का कारण बना था. हां, यही गद्दारी थी उनकी.

इशिता कश्मीर के पुलवामा ज़िले के अवंतिका इलाक़े में एक ख़ुशहाल परिवार में रहती थी. पुश्तैनी घर था उनका और कारोबार भी पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों चला आ रहा था, ड्राईफ्रूट्स का. कहते हैं कि जब कश्मीर में बर्फ़ गिरती थी तो उसके पड़दादा दिल्ली, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के चुनिंदा शहरों में फेरी लगाकर ये सूखे मेवे बेचा करते थे. इसी से उन्होंने जो पैसा और इज़्ज़त कमाई, उससे उन्होंने न केवल अपनी ज़मीन के क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी कर ली थी, बल्कि अपना मकान भी आलीशान हवेली में चमका दिया था. बस यही एक वजह थी लोगों के उनसे जलने की. और आतंकियों का एक वर्ग उन्हें धन उगाही का 'सॉफ़्ट टारगेट' मानता था. वैसे देखा जाए तो कम नहीं थी यह वजह! कल तक उन्हीं के बीच का एक आदमी फेरी लगाते-लगाते ज़मींदार की तरह जीवन जीने लगे, तो भला किसे अच्छा लगेगा.

लेकिन तेजेंद्र सिंह अपने इलाक़े के मुस्लिम परिवारों के साथ भी ऐसे ही घुल-मिलकर रहते, जैसे हिंदुओं से. खाने-पीने और त्यौहारों का कोई भेद नहीं था. ईद पर जितनी शिद्दत से तेजेंद्र अपने परिवार के साथ शरीक़ होते, उतने ही प्रेम से होली-दीवाली पर सबको आमंत्रित करते. ज़श्न के दौर चलते और सब भूल जाते – अपने काम-धंधे, अपनी-अपनी जातियां, धर्म और व्यक्तिगत नाराज़गियां.

लेकिन समय स्थिर नहीं रहता है. फिर शुरू हुआ आतंकवाद का वो दौर! न जाने क्यों उभर आया यह नासूर. उसके पिता इसके लिए ओछी राजनीति को दोषी मानते थे, जो इसका मुकम्मिल इलाज़ नहीं करना चाहती थी. वह उन दिनों इस आबोहवा में जन्म भी नहीं ले पायी थी कि बताते हैं कि पड़ोसी मुल्क के एक प्रधानमंत्री ने भाषण में कहा था कि, वो भारत को हज़ारों ऐसे जख़्म देना चाहते हैं, जहां से लगातार ख़ून रिसता रहे, जब तक कि यह देश नेस्तनाबूद न हो जाए! हज़ारों तो नहीं, पर एक ही नासूर ने इस देश की अखंडता पर एक पैबंद ज़रूर लगा दिया था.

विज्ञान की विद्यार्थी होने के बावजूद उसने इतिहास पढ़ा था, मन से. वह राजनीति शास्त्र में भी रुचि रखती थी और ख़बरों की दुनिया में भी. वह जानती थी कि भारत ने ऐसा कुछ नहीं किया है, जिससे पड़ोसी मुल्क को पूरे कश्मीर को दहशत के अंधेरों में धकेलने की इज़ाज़त दे दी जाये. अभी कुछ दशकों ही की तो बात है, वो सब एक ही देश के वाशिंदे तो हुआ करते थे.

इन सब गमगीन हालातों के बावजूद यह भी सही था कि हर रात की एक सुबह होती है, ख़ूबसूरत-सी, सूरज की रुपहली किरणों के संग जब वो आपके आस-पास अपना आभा मंडल बिखेर देती है, बिना किसी लालच के. सिर्फ़ इसलिए कि यही उसका प्रारब्ध है, सुकून है, और कुछ भी नहीं. तो, आई. आई. टी. कैंपस में उसे अपने मनमुनाफ़िक होस्ट मिल गये थे, और पढ़ी-लिखी फ़ैमिली का घर-सा साथ भी. ख़ुशमिज़ाज माहौल मिला, न जाने कितने दिनों बाद. पर, फ़ाइनल करते समय किराए की बात टाल दी थी उन लोगों ने. हौज़ ख़ास का यह कैंपस उसकी यूनिवर्सिटी से ज़्यादा दूर भी नहीं था. पिछले गेट से तो पांच सौ मीटर की दूरी पार कर कटवारिया सराय, और फिर ज़े. एन. यू. की सुरम्य पहाड़ियां. इतना नज़दीक तो न सफ़दरजंग एन्क्लेव होता और न ही आर. के. पुरम. फिर थोड़ी देर की मुलाकात

में ही मिस्टर और मिसेज़ बनर्जी की सहृदयता, उनका अपनत्व और हमउम्र बेटी अनु का साथ! सब कुछ स्वप्निल-सा था इशिता के लिए. ख़ासतौर से कई जगहों की भागदौड़ और निराशा के बाद. किराए की जब भी बात होती बनर्जी सर कहते, 'बच्चों से भी कोई पैसा लेता है क्या? तुम क्या अनु से अलग हो हम लोगों के लिए!'

जीवन के तेईस बसंत देख चुकी इशिता दुनियादारी कुछ अधिक ही अच्छे ढंग से समझती थी. इसीलिए बनर्जी सर के लिए मन में सम्मान के भाव अधिक तो हुए ही, किसी भी उन लैंड लॉर्ड या लेडी की बातों को मन से नहीं लगाया जिन्होंने उसे अपने घर गेस्ट रखना स्वीकार नहीं किया. और क्यों लगाये वो. बातों का जवाब बातों से दिया जाना कोई हल नहीं, ऐसा उसका मानना था.

□

नितांत अकेली होती तो याद करती वो अपने मृत पिता को. तेजेंद्र सिंह इशिता के पिता ही नहीं थे. वे उसके बेहतरीन मित्र भी थे. बीते दिनों में उन्होंने शहर में ही ड्राइफ्रूट्स की होलसेल की दुकान खोल ली थी. वो चल निकली थी, क्योंकि उनका सामान बेहतर और डील खरी होती थी. दिनभर की थकान से चूर होकर जब वे घर लौटते तो इशिता के हाथ की ख़ास चाय... नहीं, कहवे को पीकर फिर से तरोताज़ा हो उठते. और इशिता भी न जाने क्या-क्या फ्लेवर और तरीक़े ट्राई करती, उन्हें ख़ुश रखने के लिए. मां थोड़ा भी ख़ुश होती तो बोलती कि, 'तू न होती, या तुझमें जान न बसी होती इनकी, तो ये मुझे छोड़कर कहीं और निकल जाते. बिज़नेस को निभाते या मेरे दर्द को!'

और इस बात पर हर बार खिलखिला कर हंस पड़ते तेजेंद्र. एक दिन उन्होंने गंभीर बनकर पूछा भी,'क्या तुम्हें लगता है कि सच में ऐसा हो सकता था मधु?'

और तब मां सकपका जाती. बोलती, 'मैं क्या जानूं, मर्द लोगों की जात का क्या भरोसा..', पर, पल्लू का कोना मुंह में दबाये उनकी निश्छल हंसी दिख ही जाती.

वह खौफ़नाक रात याद करके इशिता आज भी सिहर उठती है. जब उसके पिता नहीं, उनका गोलियों से छलनी शरीर दुकान से घर पहुंचा था. जो आदमी न मज़हब में था, न जात-पांत के झमेलों में, अपनी स्थिति के अनुसार सबकी मदद करना, और सम्मान करना तेजेंद्र जी के स्वभाव में रच-बस गया था. ऐसे में इस घटना को क्या कहा जाता?

यह वह समय था, जब इशिता एम. एस-सी. के अपने एग्ज़ाम दे चुकी थी. वह पी-एच. डी. करने के लिए वहां से कहीं बेहतर जगह बाहर जाना चाहती थी जहां उसे अवसर भी मिलें और एक विस्तृत दुनिया भी. यूं तो वह बहुत ख़ूबसूरत जगह रहती थी, पर बचपन से ही उसको सहम कर रहना सिखाया गया था. कहें तो घुट्टी में ही. वह स्कूल-कॉलेज़ के अलावा कहीं आती-जाती भी नहीं थी. सिर्फ़ खिड़की के पास बैठकर चिनार के वृक्षों और रंग बदलते पल्ल्वित होते उसके फूलों को निहार सकती थी, स्वर्णिम चादर बिछाते पत्तों से रोमांचित हो सकती थी, पर खुला विचरण असंभव था. पर स्वप्न तो देख ही सकती थी. आतंकवाद के इस घिनौने चेहरे ने उसके सपने भी छीन लिये थे.

उस समय बहुत हलचल हुई. दबाव था उन लोगों को पकड़कर सज़ा देने का, जिन्होंने यह कायराना हमला कर तेजेंद्र की जान ली थी. उच्च स्तरीय पुलिस जांच में पता चल गया था कि यह एक प्रतिबंधित आतंकी संगठन का काम था. जो इंसान हमेशा भेदभाव से दूर रहा, उसे जेहादी लोग मार डालें, बिना किसी कुसूर के, यह टीस आज तक इशिता को खा रही है. तब, न जाने कितनी रातें उसकी खौफ़नाक सायों के डर में गुज़रीं, और किस तरह वह संभल पायी, बस मानो ईश्वरीय चमत्कार से उसका पुनर्जन्म हुआ हो!

मां दुनियादारी समझती थी. छोटे भाई को सहारा बनाकर उसने धीरे-धीरे दुकान पर बैठना शुरू किया. इशिता के हाथ से कई अवसर निकल चुके थे पर अंतिम मौक़े पर उसने ख़ुद को तैयार कर ही लिया. अपने सपनों की उड़ान में रंग भरने के लिए उसने नयी दिल्ली के ज़वाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के इस अवसर को मुट्ठी में बांध लिया था. अंततः मां का आशीर्वाद लेकर वह दिल्ली के लिए निकल पड़ी थी. एक परिचित कश्मीरी परिवार के साथ जैसे-तैसे कुछ दिन गुज़ारे उसने. हर सुबह यूनिवर्सिटी जाती और फ्री होकर अपने रहने की जगह की व्यवस्था ढूंढने निकल पड़ती इशिता.

कोई सवेरा ऐसा नहीं होता, जब इशिता अपने मरहूम पिता को याद न करती हो और कोई रात ऐसी न हुई जब-जब उसने पिता से बातें न की हों. वे घड़ियां स्वप्न कम, जीवंतता ज़्यादा महसूस होती थी. उसे रास्ता जो दिखाते थे, हिम्मत मिलती थी!

□

पी-एच. डी. का दबाव और अशांति तथा थोड़े सुकून के बीच झूलते दिन पहाड़से दिखते थे, सोच कर सिहर उठती कभी-कभी कि न जाने कैसे कटेंगे ये दिन-रात. पर, समय सब घाव भर देता है. पेइंग गेस्ट के रूप में ऐसा परिवार मिला कि लगा ही नहीं उसके अपने नहीं हैं वे लोग. शुरू-शुरू में मां को जब भी फ़ोन करती तो उसकी रुलाई फूट पड़ती. पर वो संतुष्ट भी थी. कहती कि ईश्वर ने तेरे पिता के रूप में दिये हैं ये होस्ट.

दो बार इशिता की मां भी दिल्ली आकर बेटी के पास रुकी थी. वह ख़ुद ईश्वर को धन्यवाद अदा करती कि एक ओर जो अन्याय हुआ उनके परिवार के साथ, तो दूसरी ओर पिता के साये के रूप में ऐसा इंसान और परिवार मिला जो उन सबके लिए एक फरिश्ते से कम नहीं.

कभी जब मधु आंटी बीमार होतीं तो ख़ुद बनर्जी अंकल ज़िद करके टोस्ट में बटर लगाते, नाश्ता कराते और दार्शनिक के रूप में बोलते, 'बच्चे लोगों को एनर्ज़ी की ज़रूरत होती है, सो ये बटर लगाना ज़रूरी होता!'

उसको ख़ुद तो कभी काम करने ही नहीं देते. उनको आइडिया होता कि इशिता को आज लौटने में देर हो जायेगी तो ढेरों ड्राईफ्रूट्स — पिस्ता, बादाम की गिरियां, काजू और किशमिश उसके बैग के किनारेवाली पॉकेट में ठूंस देते.

जब कभी उसे बिन बताये देर तक यूनिवर्सिटी में रुकना पड़ता, या लौटने में देर हो जाती तो लॉन में ही चिंतातुर बनर्जी जी को टहलते हुए पाती. हर रोज़ वह अनु के सी. बी. एस. सी. के होमवर्क और पढ़ाई की गुत्थियों के संकटमोचक के रूप में साथ होती. कश्मीरी डिशेज़ और कहवा बनाने की परीक्षाओं में भी डिस्टिंक्शन से पास होती. मां और भाई से बात कर पिता के मामले की प्रगति की जानकारी लेना और उनकी भी हिम्मत बंधाना नहीं भूलती.

एक शाम जब वह लौटी तो ऐसा कुछ पता चला कि आई. आई. टी. प्रशासन से प्रोफ़ेसर बनर्जी के ऊपर नियमों के उल्लंघन का नोटिस सर्व किया गया था. उनके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही भी अलग से की जा रही थी, क्योंकि उन्होंने एक पेइंग गेस्ट को घर पर रखकर अपराध तो किया ही, वह लड़की भी कश्मीरी थी, जिसके परिवार के आतंकवादियों से निकट संबंध बताये गये थे. आनन-फानन में ही उन्हें तीन बेडरूम के इस सुंदर बंगले से बेदख़ली का नोटिस भी मिल गया था.

प्रोफ़ेसर बनर्जी ने बहुत प्रयास किये. प्रशासन को समझाया कि इशिता उनके लिए बेटी की तरह है, और यह भी कि उसके पिता के आतंकवादियों से कोई रिश्ते नहीं रहे, बल्कि उन्होंने शहादत दी है. पर कोई फ़र्क नहीं पड़ा. वैसे भी आई. आई. टी. के स्टाफ़ क्वार्टर के आवंटन की क्यू काफ़ी लंबी है. ज़ाहिर तौर पर उनकी शिकायत की गयी थी और लोगों ने यह सुनिश्चित भी किया कि उनके साथ कोई रियायत न बरती जाये.

अंततः धूर्तता की विजय हुई. प्रोफ़ेसर बनर्जी को बेदख़ल कर दिया गया. इस कार्यवाही ने उन्हें हिला दिया था. उधर इशिता भी परिवार के साथ मानसिक रूप से टूट चुकी थी. उसने बनर्जी सर के नये किराए के मकान में शिफ़्ट होने से मना कर दिया. कैंपस से दूर होने का तो बहाना भर था. पर वह उस परिवार के साथ हुए घटनाक्रम में स्वयं को दोषी मानती रही. बनर्जी परिवार के समझाने के बाद भी अवसर मिलते ही वह फूट-फूटकर रो पड़ती थी. उसके पिता के बाद जो सहारा उसे मिला था, वह उसे खोना नहीं चाहती थी. ...और दुनिया उन्हें साथ देखना नहीं चाहती थी. नियमों के जाल ने एक बेहतर रिश्ते को ग्रहण लगा दिया था.

हालांकि इशिता का इस घटनाक्रम में कोई दोष नहीं था. बनर्जी परिवार का स्नेह भी इशिता से यथावत था. वे उसे नये मकान में साथ ही रखना चाहते थे, पर इशिता अंदर से बेहद तनाव में थी. वह अपराध बोध के साये में जकड़ी थी, न जाने क्यों!

कैमिस्ट्री में मास्टर्स किया था इशिता ने. पी-एच. डी. कर रही थी. हमेशा टॉप स्लॉट में ही थी वो एकेडमिक्स में. पर, इस घटना ने उसे दोराहे पर ला खड़ा किया था. जब भी उसने सोचा कि कुछ अच्छा होगा, तभी कुछ न कुछ चोट मिली थी उसे.

उसका मन बनर्जी परिवार के साथ था, पर वो कहीं न कहीं इस घटना के लिए स्वयं को ही दोषी मानती रही. इस द्वंद्व के चलते, वह न ठीक से खा पा रही थी, न सो पायी.

क्यों होते हैं हम इतने जटिल... क्यों नहीं सरल रह सकते? कौन-सा ऐसा अपराध था बनर्जी सर का, जो उनको सज़ा दी गयी? जब भी सोचती चीख़ने लगती और थोड़ी देर बाद सिसकियों के मध्य रूदन से कमरे की नीरवता भंग होती.

इशिता की ख़ुद से यह कशमकश दो दिन तक लगातार चली. वह यूनिवर्सिटी नहीं गयी, मधु आंटी की कॉल भी पिक नहीं की. आख़िरकार सवेरे सात बजे बनर्जी अंकल उसका पता लेने नये पेइंग गेस्ट के घर पहुंचे. पर नॉक करने पर भी कोई जवाब नहीं मिल पाया. आख़िरकार लैंड लॉर्ड और पुलिस की मौज़ूदगी में दरवाज़ा तोड़ा गया.

आज के अख़बारों में एक कोने में इशिता का नाम दर्ज़ हुआ था. उसने मुनीरका के डी. डी. ए. फ़्लैट में अपने उस नये मकान मालिक के घर पंखे से लटककर आत्महत्या कर ली थी, जहां उसने आनन-फानन में शिफ़्ट किया था.

चंद लोगों के अलावा कोई नहीं जानता था कि इशिता ने आत्महत्या क्यों की. ज़िंदगियां यूं ही चलती जाती हैं. वही लोग, या उन जैसे लोग किसी और अच्छी-भली ज़िंदगी को बर्बाद करने की जोड़-तोड़ में जुट गये थे. जगह अलग हो सकती थी. आई. आई. टी. का परिसर, मुनीरका, सफ़दरजंग एन्क्लेव या पुलमावा का कोई गांव, क्या फ़र्क पड़ता है!

जो बेटी किसी तरह अपने पिता की हत्या के सदमे से उबरने में कामयाब हो गयी थी, वह अपने पिता-तुल्य होस्ट के स्नेह से जुड़ी स्मृतियों और परिवार के प्रेम से दूर होकर कुछ समय बाद ही जीवन का मोह त्याग गयी थी. कैमिस्ट्री में शोध कर रही थी पर शायद अपने मन की बदलती रसायनिकी से अनभिज्ञ रह गयी थी!

फ़्लैट नंबर- १०३, रीगेल रेज़ीडेंसी,
कामायनी अस्पताल के पीछे,
आगरा एन्क्लेव सिकंदरा,
आगरा- २८२००७.
फोन : ९८९७७४११५०,
ईमेल: rgsverma.home@gmail.com

कविता

वो पागल

ज्योति मिश्रा

चटक कृष्ण रंगी चूनर,
चमकते सितारे,
झांकता, छिपता..
शशि का अनुपम मुखड़ा

निकुंज के पीछे,
आसमानी मोतियों के प्रतिबिंब,
धरातल पर जुगनुओं की टोली,

सन्नाटों में गूंजती,
झींगुरों की झनझनाहट,
मद्धम हवा के थपेड़ों से सिहरता,
हड्डियों का वो ढांचा,

उस भयानक स्याह रंग में,
साथ छोड़ती सांसें,
ठिठुरते, सिमटते, हाथ-पांव,
चहुं ओर तलाशती आंखें,
अपना अस्तित्व, अपनी परछाई.

निमित्त किरणों के समूह,
से भी डटकर, स्थिर, सबल,
उजले दिवस की साथी,
तत्पर प्रत्येक पग पर...,
साथ देने की,
भोर, दोपहर, सांझ... सबसे लड़कर,
नख-शिख... घटती,
बढ़ती रहती अच्युत–सी.

आत्मज्ञ इतनी...
मानो हर कण.. सामर्थ्य रहित है
उसके समाप्ति की,
मानो जग... निरभ्र, निरंबु, निरर्थक,
तत्वों से निर्मित अपने
निरा विशेष मोहरे पर आश्रित हो,

नियत काल पर आगमन,
सिमटता प्रत्येक जीवन,
बचपन, बुज़ुर्ग, यौवन,

ममता, चाहत और स्वप्न,

अचानक...
गर्दन की घाटियों में श्वास की एक लहर,
और फिर सब... थम... थम.. थम!

उद्वेलित नसों को गंभीर आदेश,
शांत.. एकटक निहारता मयंक को,
प्रकृति प्रदत्त पीपल
की जड़ों के चबूतरे पर
शयन करता... वो पागल,

संतुष्ट था... ईश्वर के नियम से,
नियत समय पर,
मखमली चादर और चबूतरों की मृत्यु से,

संतुष्ट था... इस असमानता भरे वन से,
उसे मुक्त करने वाली इस रात से,

संतुष्ट था... ईश्वर के फ़ैसले
और अपने आप से,
.. वो पागल... संतुष्ट था.

ग्राम- रामापुर (बाज़ार), पो. -तरबगंज,
जि.-गोंडा- २७१४०३ (उ. प्र.) मो.: ९७९२३३९६५२

लघुकथा

मध्यस्थ

✍ डॉ. हूंदराज बलवाणी

किसी धनवान के युवा बेटे से नशे में कार चलाते हुए कुछ दुर्घटनाएं हो गयीं. सबसे पहले एक मज़दूर की कोने में खड़ी हाथ-गाड़ी उसकी चपेट में आ गयी. उसके बाद एक साइकिल वाले को गिरा दिया और कार का पहिया उसके पांव पर चढ़ गया और फिर कार एक दुकान पर चढ़ गयी और दुकान के कांच को तोड़ दिया. कार चालक भाग गया. लोग इकट्ठे हो गये.

उसी समय शहर का समाजसेवक दौड़ता हुआ आया. लोगों की पूरी बात सुने बग़ैर उसने चिल्लाना शुरू कर दिया. इतना सारा नुकसान कर दिया उस शराबी लड़के ने. उसे नहीं छोड़ा जायेगा. और उसने किसी आदमी को भेजकर युवक के पिता को घटनास्थल पर बुलाया. धनवान को आते देखकर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगा, 'भाइयों, तुम लोग ऐसा मत समझना कि मैं उस शराबी को यों ही छोड़ दूंगा. उसे हवालात में पहुंचाना अब मेरा काम है. ये धनवान लोग अपने आपको समझते क्या हैं?'

धनवान ने आते ही विनती की, 'देखिए भाई साहब, इस बात को आगे बढ़ाने के बजाय आपस में समझ लें तो अच्छा रहेगा. मैं नुकसान की भरपाई करने के लिए तैयार हूं.'

समाजसेवक बोला, 'ठीक है, मैं आपके बंगले पर आता हूं.' फिर दुकानदार तथा अन्य लोगों को आश्वासन देते हुए कहा, 'आप लोग चिंता मत करें. मैं इसके साथ जाता हूं. मैं कल सुबह आपसे यहीं मिलूंगा.'

वह धनवान के साथ गया. उसे तरह-तरह के डर बताकर पूरे बीस हज़ार छुड़ा लिये. खान-पान भी हो गया. फिर डकारें लेता घर आकर आराम से सो गया.

दूसरे दिन सभी इकट्ठे हुए. मज़दूर, साइकिल वाले तथा दुकानदार के बीच चार-पांच हज़ार बांट दिये और बताया, 'युवक के धनवान बाप की पहुंच बहुत दूर तक है. इसलिए वह हाथ में ही नहीं आ रहा था. यह चार-पाच हज़ार भी बड़ी मुश्किल से मिले हैं. चुपचाप रख लो. शुक्र करो कि इतने पैसे भी मिल पाये हैं.'

ऐसा कहकर वह वहां से खिसक गया. आगे जाकर अपनी जेब में रखी बाक़ी राशि को हाथ लगाकर कहने लगा, 'आज का दिन अच्छा रहा.'

१७२, महारथी सोसाइटी, सरदारनगर, अहमदाबाद- ३८२४७५.
मो. : ९९९८१७२८५४

उफान

जयंत

१७ नवंबर १९६१,
बिहार के धनबाद शहर में
(वर्तमान में झारखंड).
शिक्षा - एम. ए. (अर्थशास्त्र),
बी. एड.

अभी भी उफान ज़ोरों पर है. पानी अंतिम सीढ़ी से टकरा कर, छप-छपाक की आवाज़ करता बार-बार दूर तक पसर जाता है और किनारे पर बने छोटे से मंदिर के शिवलिंग को भिगा जाता है. जलस्तर और गंगा को देखने आये लोगों को ऐसा लगता है मानो गंगा मईया स्वयं भोलेनाथ का जलाभिषेक कर रही हैं. आपस में बातें करने वाले चर्चा करते हैं कि चौरानब्बे में गंगा का यही रूप था. कुछ खंडन करते हुए कहते हैं कि उन्नीस सौ पचहत्तर के बाद ऐसा देखने को मिला है. इस वर्ष वर्षा तो ज़्यादा हुई नहीं फिर कहां से आ गया इतना पानी? एक ने कहा — 'अरे भाई जहां से गंगा निकलती है, वहां बहुत वर्षा हुई है.'

'हां, भाई उधर उत्तराखंड, हरिद्वार में बहुत वर्षा हुई है.'

किनारे पर बनी चारदीवारी से सटे दो-चार तंबू लगा कर उसमें कुछ खाट, टेबुल, कुर्सियां आदि लगा दी गयी हैं. बिजली की भी व्यवस्था की गयी है. इसमें कुछ बाबू लोग दिन-रात कैंप कर रहे हैं. कहते हैं कि बाढ़ की स्थिति पर नज़र रखने आये हैं. हूं ऽ...ऽ... तो कुछ करते क्यों नहीं! उमस के मारे तो हालत ख़राब है, दिन भर बरगद की छांव में टेबुल-कुर्सी निकाल कर टेलीविज़ननुमा मशीन पर पता नहीं क्या करते रहते हैं, केवल टपाटप उंगली चलाते रहते हैं और कागज़ पर जाने क्या हिसाब-किताब जोड़ते रहते हैं? — सखिया ने करछुल से हंडे में भरे दूध को चलाया..., दीपू ने ही तो बताया था, ... क्या नाम है ...उसका? ...हां लटपट...! क्या करना है उसका नाम याद करके?

उफान ज़ोरों पर है... अभी तो पानी और बढ़ेगा, बाबू लोग कह रहे हैं. ...तब क्या होगा, ...उधर भर गया तो घर-द्वार सब छोड़ कर इधर भागे परंतु अब कहां जायेंगे? ...शहर है, यहां पानी नहीं बढ़ने वाला. बाबू लोग रात-दिन चौकसी कर रहे हैं. उनके लिए खाने-पीने का सब सामान आ रहा है. जहां-तहां

परिचय

कृतियां - परिचय (दस्तक साहित्य परिषद् पटना द्वारा सम्मानित), राग देश तथा अन्य कहानियां, आत्मजा एवं पश्चिम का सूरज (चारों कहानी संग्रह), मृणाल (खंड काव्य). अस्सी से अधिक कहानियां स्तरीय एवं साहित्यिक - पत्रिकाओं में प्रकाशित. कुछ कहानियां मराठी, गुजराती एवं अन्य भाषाओं में अनुदित. आकाशवाणी से कुछ कहानियां, कविताएं एवं वार्ताएं प्रसारित तथा कुछ पुरस्कृत. 'सेवक स्मृति साहित्य श्री' सम्मान से पुरस्कृत.

विचार - मेरी कहानियां मेरे विचारों का दर्पण या प्रतिबिंब न होकर मेरी काल्पनिक अभिव्यक्ति मात्र हैं. इनमें यथार्थ संयोगवश ही हो सकता है. मैं स्वयं के सुख के लिए लिखता हूं; दूसरों पर स्वयं के विचारों को थोपने के लिए नहीं.

संप्रति : केंद्रीय विद्यालय कंकड़बाग, पटना (बिहार) भारत, में शिक्षण सेवा में कार्यरत.

पर रोक लगाने के लिए ट्रक से बोरे में भर-भर कर बालू आ रही है. देखने वालों की भीड़ भी तो कोई कम नहीं है, सुबह से ही तमाशबीनों का तांता लग जाता है. उस समय तो ज़्यादा लोग टहलने ही वाले होते हैं. दोपहर में थोड़ा सन्नाटा रहता है और शाम होते तो ...बाप रे बाप! कोई गाड़ी से आता है तो कोई मोटर साइकिल से और न जाने कितने पैदल आते हैं. बीच-बीच में नेता लोग भी आते-जाते रहते हैं.

लोगों को काम ही क्या है? मोबाइल से फ़ोटो खींचना या वीडियो बनाना. बड़े-बड़े कैमरे वाले भी आते हैं, मोटर साइकिलों पर बैठ कर. ...दो रोज़ पहले वह करिया-सा अधेड़ आदमी आया था, ...बड़ी सी दाढ़ी वाला. कैसे घूर-घूर कर मुझे देख रहा था, कितनी ख़राब नज़र से? औरत थोड़ी सुंदर हुई तो ! देखने में चोर-बदमाश, उचक्का जैसा लग रहा था. मर्द सब तो ऐसे ही देखते हैं परंतु उसके साथ वाली घोड़ी! पता नहीं कौन थी उसकी औरत तो हो नहीं सकती. उससे उम्र में कम से कम बीस साल तो कम रही ही होगी? पता नहीं शहरी लड़कियों का क्या ठिकाना? चेहरे पर क्रीम-पॉलिश और जाने क्या-क्या लगा रखा था? औरत वाले सैलून भी तो होते हैं यहां, शहरों में. लखनी का विवाह शहर के पास ही तो हुआ है. वह शहर आती-जाती रहती है, घूमी भी है. उसने ही तो बताया था कि वहां मशीन होती है; मशीनें उन्हें जवान बना देती हैं. तभी तो कैसी बेशर्म जैसी उस मुए से चिपक कर बैठी थी!

सखिया ने करछुल चलायी उफान आने लगा था.

पिछले सप्ताह से वर्षा हो रही है और उधर हिमालय की तराई में बादल फटने से गंगा और भर गयी है. गांव तक ख़बर आयी कि गंगा का पानी तटवर्ती इलाकों में फैल सकता है. रात जैसे-तैसे कट गयी और सुबह होते प्रखंड कार्यालय से आदमी ने आ कर दियारे में रहने वालों को सचेत किया कि दोपहर के पहले सभी सुरक्षित स्थानों पर चले जायें, गांव में कभी भी पानी आ सकता है, उफान ज़ोरों पर है. गांव वालों को ले जाने के लिए कुछ ट्रैक्टर और कुछ छोटे ट्रक भी आ पहुंचे. लोगों की संख्या ज़्यादा थी और वाहन आये कम. वे लोगों को ले कर एक बार गये तो जब तक आते, लोगों का धैर्य टूट चुका था. जिसको जैसे संभव था, भाग रहा था. सबसे ज़्यादा समस्या पशुओं को ले कर हो रहा थी. जो खाली हाथ थे या जिनके पास साथ ले जाने लायक सामान थे वे भाग चुके थे. आसपास या रिश्तेदारों के यहां अथवा नज़दीक जाने वाले अपने जानवरों को हांकते हुए निकल भागे. अब क्या करे राधे..., कहां जाये? पत्नी के मायके तो रेल से जाना पड़ता है. तीन घंटे लगते हैं पसिंज़र से और किराया अलग. जानवर कैसे और कहां ले जाये, दो बच्चे, क्रमश: सात और पांच वर्ष के, एक बूढ़ा बाप और एक अदद विधवा बूढ़ी फुआ; जिसका कोई नहीं. इन सब की चिंता से मुक्त, उधर बढ़ता आ रहा उफान.

ऐसा नहीं था कि राधे और सखिया ही एक मात्र थे उस दियारे में; जिन्हें स्वयं की समस्या के निदान की राह नहीं दिखायी दे रही थी, इस तरह के और भी कई परिवार थे. किसी के यहां कोई बूढ़ा, किसी के यहां बीमार तो किसी की औरत नवें महीने में. कैसे जाये कोई ट्रक या ट्रैक्टर से? दोनों ही से जाने में, किसी एक की जान का ख़तरा है – मां या पेट में पल रहा बच्चा. ट्रक, ट्रैक्टर आ गये यही बहुत है. ग़रीबों के लिए एंबुलेंस या कार कौन भेजेगा? बचे हुए लोगों की भीड़ गंगा किनारे आ पहुंची. उफान ज़ोरों पर है.

अब क्या किया जाये? एक ही रास्ता है, नाव से उस पार चला जाये, शहर में. वहां पानी नहीं आने वाला इतना तो तय है! बड़ी-बड़ी चार नावें हैं. एक पर औरतें और बच्चे, दो पर मवेशी, एक पर सामान परंतु सामान के साथ भी तो आदमी चाहिए? बहस होने लगी — पहले स्वयं को बचाना ज़रूरी है. अरे उफान तेज़ है भाई; कहीं नाव ही न पलट जाये? पलटेगी कैसे एकदम नया पंप है. दो नाव पर नये पंप हैं और दो पंपों की इसी गर्मी में सर्विसिंग हुई है. अब जो भी हो, यहां रह कर क्या करना है? बहस करने या यहां डूब मरने से तो अच्छा है कि निकल लिया जाये. चार-पांच वर्षों से तो हर बार भागते रहे हैं. जो यहां रहा उसे ही जीवन से हाथ धोना पड़ा है. सब लद गये और फट्-फट्, फट्-फट्, धकधक-धकधक कर के नावें चल पड़ीं. सवार लोगों के हृदय भी धक-धक कर रहे थे. चार घंटे से ऊपर का समय लगा और सभी दूसरे किनारे आ पहुंचे. प्रश्न था कहां रहें? किनारे पर कुछ पुराने सरकारी आवास जिन्हें जीर्ण-शीर्ण होने के कारण रहने योग्य नहीं ठहराया जा चुका था; उसमें वृद्धों और ज़रूरतमंद लोगों को ठहरा दिया गया. जिन्हें जगह न मिल सकी उन्होंने बांस-बल्लियों और लकड़ियों का प्रबंध किया और सड़क के किनारे चादर-कपड़ों की मदद से तंबू खड़े कर लिये. बह कर किनारे जमा हो रही लकड़ियों को इकट्ठा कर सुरक्षित स्थान पर रखा जाने लगा ताकि उनसे जलावन का काम लिया जा सके.

राधे ने मैदान के एक तरफ़ अपना तंबू खड़ा कर लिया और जानवर बांध दिये. प्रशासन की ओर से कुछ तंबू-कनात भी भेजे गये थे. राधे को भी उनमें से एक मिल गया. अनाज बहुत कम आया था और उतने से काम चलना संभव नहीं था. सभी अपनी-अपनी व्यवस्था करने लगे. जिनके पास नकद रुपए न थे वे सोच रहे थे कि कुछ तो प्रबंध करना ही पड़ेगा. राधे ने सखिया को समझाया कि दो गायें और तीन भैंसे दूध दे रही हैं, उन्हीं का दूध बेच कर पैसे मिल जायेंगे. शहर में दूध की खपत कुछ ज़्यादा ही रहती है. उसने दूध दुहा, बिना मडगार्ड वाली साइकिल के दोनों तरफ़ बड़े कैन में भर कर लटकाया और बेचने निकल गया. दूध बेचने में कम कठिनाई नहीं हुई. उसे गांव वाला और ज़रूरतमंद समझ कर ग्राहक जल्दी हत्थे चढ़ते ही नहीं थे. कोई कहता कि इंजेक्शन वाला दूध है तो कोई कहता पानी मिला और कोई तो दूध को ही नकली बताता. किसी तरह दूध बिक तो गया परंतु दाम अच्छा नहीं मिला. हे भगवान! यह उफान कब शांत होगा ?

दो से तीन दिनों में दुर्दिन के लिए बचाये गये चंद रुपए राधे की ज़ेब से उफान के साथ बाहर आ गये. अब इस नये उफान का सामना कैसे किया जाये? दूध उफनने लगा और सखिया का हाथ भी तेज़ी से चलने लगा. अगले ही दिन बड़े बच्चे दीपू की तबीयत ख़राब हो गयी. ओस पड़ रही है, रात में लगभग खुले में ही सोना है, हवा आती ही रहती है. नहीं चाह कर भी सखिया ने अपने गले से चांदी की जंजीर उतार कर राधे के हाथों में रख दी और पलट कर आंखों में उमड़ आये उफान को छिपा लिया परंतु राधे की आंखों का उफान; बाहर तो आ ही गया. अगली सुबह एक पिकअप आ खड़ी हुई. उससे दो आदमी उतरे और उन्होंने दूध ख़रीदा. दाम तो कम ही लगा परंतु सबों का दूध हाथों-हाथ बिक गया. शाम को वे फिर आये. राधे की बारी आयी तो सखिया ने भी एक तरफ़ से दूध के हंडे को पकड़ा और उनके सामने ला रखा. एक ने मुंह बिचकाते हुए कहा कि दूध पतला है. सखिया और राधे ने बहुत कहा परंतु उसे और एक-दो लोगों को अन्य की तुलना में कम रुपए मिले. वह तो ग़ुस्से में उन्हें दूध देना ही नहीं चाह रहा था परंतु औरों के कहने पर उसने दे दिया. सभी यही कह रहे थे — हे भगवान यह उफान आता ही क्यों है?

पिकअप पर के आदमियों ने कहा कि छेना यानी पनीर फाड़ कर देने पर ज़्यादा रुपया देंगे. गाड़ी सुबह फिर आयेगी. दूध गर्म रखना होगा और सामने फाड़ना होगा. राधे के मन में कुछ आस जगी. अच्छा कल की बात कल होगी अभी तो सौदा ले आऊं. ...यही सोचता हुआ राधे मिले रुपए को कमर में खोंस कर चला गया. पिकअप में आये आदमी हिसाब मिला रहे थे. उनमें से एक तंबुओं के पीछे गया और मिनट भर बाद सखिया के पास आ कर फुसफुसाते हुए बोला — 'दूध के अच्छे पैसे चाहिए?' वह हंसा और सखिया समझ नहीं पायी.

वह चुप रही. उसे अपनी सांस सुनायी पड़ रही थी.

'दस मिनट के लिए उधर चल, ये दूंगा' उसने ज़ेब से रुपए निकाल कर दिखाये. सोच ले नहीं तो कल... तू है ही बड़ी मस्त...!'

सखिया गिरती-पड़ती तंबू के अंदर भागी जहां विधवा बुआ और उसके बूढ़े श्वसुर थे. ...कलेजा धकधक कर रहा

लघुकथा

प्रौढ़-प्रेम

✍ सेवा सदन प्रसाद

हर शाम घड़ी में छ: क्या बजते, राधा के पांव पार्क की ओर बढ़ चलते. गोपीचंद तो पहले से ही पहुंच कर पत्थर की कुर्सी पर बैठ जाते और बगल वाली कुर्सी पर अपनी छड़ी रख देते ताकि कोई और आकर बैठ न जाये.

यह एक शाश्वत सत्य है कि पुरुष और स्त्री को आजीवन एक दूसरे की ज़रूरत रहती है दोनों एक दूसरे के पूरक हैं. पर जीवन के इस पड़ाव में राधा एवं गोपीचंद दोनों अधूरे हो गये थे.

अचानक गोपीचंद को राधा आती हुई दिखी. तब वह कुर्ते की जेब से रुमाल निकाल कर पत्थर की कुर्सी को पोंछने लगे. राधा रोज़ की इस प्रक्रिया को देखकर मुस्कुरा पड़ी. फिर उसके लिए आरक्षित रखी गयी पत्थर की कुर्सी बैठ गयी.

गोपीचंद ने अपनत्व जताते हुए पूछा — 'आज देर हो गयी?'

'हां, पड़ोसी महिलाओं के संग 'मीना बाज़ार' चली गयी थी, अचानक जब घड़ी पे नज़र पड़ी तो सीधे पार्क चली आयी.'

'इस बैग में क्या है?'

फिर राधा ने एक-एक कर सारा सामान सामने रख दिया — 'एक रुमाल, एक क़लम, एक डायरी और छड़ी के लिए चांदी की एक मूठ.'

'तुम्हारा तो इस दुनिया में न कोई भाई है, न मामा, न काका और न ही तुम्हारा...'

'वो तो ठीक है पर, सब कुछ न कुछ ख़रीद रही थीं, तो मैंने भी कुछ ख़रीद लिया.' और उसके चेहरे पे छा गयी एक बाल सुलभ मुस्कान.

गोपीचंद बस ग़ौर से देखते ही रहे — ये सारी चीज़ें तो उसकी ज़रूरत की ही लगीं.

✆ ६०१, महावीर दर्शन सोसायटी, प्लॉट नं. ११सी, सेक्टर-२०, खारघर, नवी मुंबी-४१०२१०. मो. : ९६१९०२५०९४

था; मानो अंदर ही अंदर उफान आ गया हो. रात भर नींद नहीं आयी, बुरे-बुरे स्वप्न आते रहे. ...हे भगवान क्या होगा? सुबह नींद लगी तो राधे ने जगा दिया. कहने लगा जल्दी से आग जला ले तब तक वह जानवरों को दुह रहा है. दूध गर्म रहेगा तो छेना तुरंत तैयार हो जायेगा. सखिया ने धड़कते मन से आग जलायी. तब तक राधे दूध दुह लाया. वह हंडे में करछुल चला रही थी. अब वह राधे को क्या समझाये और कैसे समझाये? वह चिंता में डूबी हुई थी और तभी दूध उफान के साथ बाहर आया और जल रही लकड़ी बुझ गयी. सखिया बुत बनी पत्थराई आंखों से उतरते उफान को देख रही थी और राधे गालियां बकता उसे झकझोर रहा था.

द्वारा -श्री अवध विहारी प्रसाद,
शिवदुर्गालय गली, महेन्द्रू,
पटना ८००००६,
मो.: ९४३००६०३३६
ईमेल : kumar.jayant808@gmail.com

वह नहीं आयेगी!

सुरेंद्र अंचल

जन्म - ५ फरवरी १९३९
शिक्षा - एम.ए. बी. एड.,

झुग्गी में 'लाड़ो बिटिया' बाट जोह रही होगी.

'लाड़ो! तेरे लिए बिस्कुट और फटाके लाने हैं ना! पगार बैंक में जमा हो गयी है — लेकर अभी आयी. कटोरी में घाट रखी है, खा लेना.' कह कर निकली हूं. शरीर बुखार से अभी भी तप रहा है.

आटा ख़त्म, तेल नहीं, शक्कर भी नहीं. दीवाली सर पर आ गयी. आज से राशन भी मिल रहा है. नरेगा की मजूरी अब बैंक में जमा हो गयी — ले ही आऊं. सौ रुपया रोज़ देने की बात थी किंतु साठ रुपये रोज़ का ही हिसाब बना बताया है. जो भी हो, लानी है. राशन भी तो लेना है. दो दिन बाद लेने जाऊंगी तो राशनवाला कह देगा कि माल ख़त्म. आने पर मिलेगा.

ग़रीबी रेखा के नीचे के लोगों को दो रुपये किलो गेहूं मिल रहे हैं. किंतु 'बी. पी. एल. का कारड' बने तब न. कारड बन भी पाये तो कितनों को मिल पाता है राशन. पहली बात तो कारड बनवाने के लिए ऑफ़िस में जाने से ही डर लगता है. हिम्मत करके गयी भी तो दो बार तो बाबूजी नहीं मिले. तीसरी बार मिले भी तो उनकी भेंटपूजा के लिए सौ रुपये पास में थे नहीं. जाने कितने-कितने लफड़े बता दिये. यह लाओ, वह लाओ.

त्यौहार है तो मक्की की घाट खिलाऊंगी क्या लाड़ों को? इकलौती लाड़ेसर को? पांचवां बरस लग गया है. सब समझने लगी है. फटाकों के लिए हट कर रही है. अरे साल में एक बार ही तो आती है दिवाली. अमीरों के बंगलों में तो रोज़ ही पसरी रहती है... दीवाली. रात होती ही नहीं शायद.

हां, उस रोज़ नेताजी के बंगले में कोई जीमण था. उसे भी मज़दूरी पर बुलवाया था — पूड़ियां बटने. बाप रे बाप! इतनी जगर-मगर रोशनी.

परिचय

हिंदी और राजस्थानी दोनों में समान लेखन. कहानी, कविता, लघुकथाएं, निबंध, एकांकी विविध विधाओं में ब्यालीस पुस्तकें प्रकाशित; अनेक भाषाओं में कहानियों का अनुवाद; 'राजस्थान हिंदी साहित्य अकादमी' से पुरस्कृत तथा 'राजस्थानी साहित्य अकादमी' से सम्मानित.

इतने लोग – लुगाइयों का जमावड़ा. इतनी दारू. मैं तो पानी की एक मटकी से ही चौबीस घंटे निकाल लेती हूं; यहां तो कई-कई मटकियां दारू गटक गये होंगे लोग.

इतनी ऊंची-ऊंची हवेलियों के बीच दलितों की झुग्गी-झोपड़ियां, शिकारी कुत्तों के बीच घिरी हिरणियों की तरह जी रही हैं. किंतु अब इन्हें हटाने के हुक्म ने नींद हराम कर रखी है. शहर का सौंदर्यीकरण जो होना है.

हां, कभी गांव में उसका भी 'घर' कहलाने लायक घर था. पूरब में हहर-हहर करती नदी बहती थी. कितनी-कितनी तैरी हूं उसमें, भैंस की पीठ पर बैठकर परली तीर पहुंच जाती थी, गन्नों के खेत तक. नदी पर बांध बनाने का 'ओडर' आया. एक, दो, नहीं, पूरे तेरह चौदह गांव डूब में आ रहे थे. अच्छा मुआवज़ा और पक्के मकान बना कर नयी जगह बसाने का लोभ देकर, अंगूठे लगवा दिये. सब कुछ उजड़ गया. अंधड़ के तिनकों की तरह बिखर गये सब.

कुछ मर्द लोगों ने विरोध में आंदोलन भी किया. उन लोगों में 'लाड़ो के पापा' भी थे. पुलिस की लाठी ऐसी पड़ी कि गिर पड़े तो फिर उठ ही नहीं सके. गांव-घर तो उजड़ा ही, उसका सुहाग भी उजड़ गया.

भौं... भौं, सिटी बस का हॉर्न जाने कब से भौंक रहा था. वह सुन नहीं पायी. पुलिस वाले ने बांह पकड़ कर फुटपाथ पर धकेल दिया — ऐ बुढ़िया! मरेगी क्या? वह गिर पड़ी. सहमी, कुछ समझी, संभली, फिर उठी. सिर ज़ोर से भन्नाने लगा.

'झुग्गी में लाड़ो बिटिया बाट जोह रही होगी.'

...लाड़ो! तेरे लिए बिस्कुट और फटाके लाने हैं ना! पगार बैंक में जमा हो गयी है. लेकर अभी आयी कटोरी में घाट रखी है. खा लेना... कहकर निकली हूं. बुखार की तपन तो कम पड़ी है पर भूख और धूप से चक्कर आने लगा है.

सामने से कोई जुलूस आता दीखा. वह एक तरफ़ बिजली के खंभे से सट कर खड़ी हो गयी. ढेर सारे आदमी-औरतें, बालक-बालिकाएं, सिर पर सफ़ेद टोपी पहने थे. हाथों में तख़्तियां थीं. नारे लगा रहे थे — अन्ना हज़ारे ज़िंदाबाद! भ्रष्टाचार का भूत भगाओ. कालाधन वापस लाओ. जनलोकपाल बिल पास करो.

मुट्ठियों की कसावट ऐसी कि ये लोग गढ़ जीत ही लेंगे. देख, सुन कर मन कुछ हल्का हुआ. आम लोगों पर भ्रष्टाचार और महंगाई का जो पहाड़ टूट पड़ा है, उसने उन्हें सड़कों पर उतरने को मज़बूर कर दिया. वाह! भ्रष्टाचार मिटेगा तो महंगाई आप ही मिट जायेगी. मज़ा आ जायेगा. उसका बी. पी. एल. कार्ड बन जायेगा. इंदिरा आवास के लिए पांच साल से भरे फारम का अब नंबर निकल सकेगा.

ऐसी सुखद कल्पनाओं ने उसे गुदगुदा दिया. ऐसा लगा मानो उसने अभी–अभी ज़िंदगी की झलक देखी है — किंतु दूर से. काश वह उसे छू सके?

वह आगे बढ़ी. जुलूस पीछे छूट गया.

बांये तरफ़ के मकान के सामने बैंडबाजा बज रहा था. औरतों के गीत की करुण रागिनी कानों को गुदगुदा रही थी — कोयल बाई सिद चाल्या. किसी की लाडेसर ससुराल के लिए विदा हो रही है. उसे भी अपनी 'लाड़ो' को ऐसे ही विदा करना पड़ेगा. हां, वह ख़ुद भी तो मायतों को छोड़कर बिदा हुई थी.

अभी पिछली आखातीज पर पड़ोस की 'लिछमी' बिटिया की विदाई हुई थी. कितनी बिलख-बिलख कर रोयी थी. उसे इस तरह रोती देखकर 'लाड़ो' सहम गयी. उससे छाती से चिपट कर पूछा था — मां! लिछमी दीदी को इतने अच्छे कपड़े पहनाए हैं. कितने गहने पहने हैं?

— 'लाड़ो! इसका विवाह हुआ है ना! इसलिए इसकी विदाई हो रही है, ससुराल जा रही है—

— यह नहीं जाना चाहती तो क्यों भेजते हैं?

— जाना पड़ता है बेटी! मां-बाप सबको छोड़ना पड़ता है.

— मां! क्या तुम भी मुझे छोड़ कर ससुराल चली जाओगी? मत जाना.

उसकी ऐसी अबोध बात ने उसे एक बारगी झकझोर

दिया. आल्हाद की एक लहर रोम-रोम को झंकृत कर गयी. लगा कि किसी ने मुट्ठीभर महुवे के फूल उसके मुंह पर फेंक मारे. दूसरे ही क्षण वे फूल रेत बनकर उसकी आंखों में किरकिराने लगे. लाड़ो को छाती से चिपकी लिया.

पीहर? ससुराल? पीहर? कितनी सार्थकता है, इन भावनात्मक शब्दों की.

पीहर? जहां मां होती है. बाप होता है. भाई-बहन होते हैं. सहेलियों की चुहल होती है. ममता और वात्सल्य का झरना बहता है. सपनों की रंगीन दुनिया होती है.

और ससुराल? जहां सासू मां होती है. ससुर होता है देवर और नणदों की चुहल होती है. लज्जा होती है. मर्यादा होती है. सुरक्षा होती है और होता है जनम-जनम का साथ निभाने का वादा करने वाला जीवन साथी.

पीहर में अब मां रही न बापू! न भाई रहे न भाभियां!

और ससुराल? न सासू मां रही न सुसुर जी. न उसका सुहाग. अब तो इस बूढ़ी झोपड़ी के तड़के हुए बांस, सड़े-गले छान-छप्पर ही मेरा ससुराल है. समय की नदी सब कुछ बहा ले गयी.

अपने आपको दिलासा दिया — मेरे पास सिर छिपाने को यह झोपड़ी तो है. रेल्वे फाटक के पास वाली झुग्गियों को तो तीन महीने पहले बुलडोज़र ने ऐसा कुचल दिया कि निशान भी नहीं बचा. लोग फ़ुटपाथों पर सोने के लिए मज़बूर हो गये.

बांये फ़ुटपाथ पर कुम्हारी काकी बैठी दीये और धूपेड़े बेच रही थी. लौटते समय पाचेक दीये और एक धूपेड़ा लेती चलूंगी. पगार मिलने की बात याद आते ही मन में आनंद की एक लहर लहरा गयी.

इस बार लाड़ोरानी को मनभर कर दीवाली मनवाऊंगी. खील बतासे लाऊंगी. नुकती के लड्डू लाऊंगी. उसके हाथों से दिये जलवाऊंगी भी तो रखवाऊंगी भी. फराक भी फट गयी है. नयी लाऊंगी. आजकल तो सिली-सिलाई मिल जाती है. फटाके भी ख़ूब लाऊंगी... पर, पगार मिलते ही सबसे पहले तो शाम को राशन लाना है. फिर दूसरी बातें.

सेठ अरोड़ा ने अभी परसों ही उसे कहा था कि सुगना बाई, इस महीने बंगले की साफ़-सफ़ाई करनी है, झाड़ू पोछा भी लगाना है. बता तुझे नरेगा में क्या मिलता है? मैं दो हज़ार दे दूंगा. ज़रूरत हो तो दो चार सौ रुपया पेशगी ले जा.

ठीक ही तो है. दो हज़ार एक साथ हाथ में आयेंगे — नक़द! बैंक का चक्कर भी नहीं. पड़ोसन फातमाबी के अढ़ाई सौ रुपये चुका दूंगी. बी. पी. एल. कार्ड के लिए सौ रुपया भी दे सकूंगी. मेरा भी घाघरा तो सिलाना ही पड़ेगा. इसमें कितने पैबंद लग गये हैं.

किंतु फातमाबी से जब मैंने सेठ के बंगले पर काम मिलने की ख़ुशख़बरी बतायी. तो वह ख़ुश नज़र नहीं आयी मुंह उतार कर कहा था — वह मोटा सेठ भरोसे लायक नहीं है री. अकेला है. सेठानी तो कई साल पहले छत से गिर कर मर गयी थी बेचारी.

जाने क्यों और क्या समझकर काकी ने ऐसा कहा? मुझे तो काम चाहिए. पैसा चाहिए. जाऊंगी. करजा उतरेगा. छप्पर भी तो ठीक कराना है. पिछली बरसात में ठौड़ ठौड़ से पानी टपक रहा था, टपक टपक! बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ी थी. हां, जाऊंगी. पगार तो देगा ही देगा उसे खाने थोड़े ही दूंगी. इस महंगाई के ज़माने में जीना है तो अच्छा-बुरा भी सहना पड़ेगा. लाड़ोरानी के लिए.

नुक्कड़ पर 'हो हल्ला' दीखा! रुक कर जानना चाहिए कि माजरा क्या है? किसी लफंगे ने स्कूल जाती लड़की पर पान की पीक थूक दी. ड्रेस बिगड़ गयी. लड़की ने लपक कर उसको पकड़ लिया. उसकी सहेलियां लफंगे की चप्पलों से धुनाई कर रही थीं. — शाबास इसे कहते हैं मरदानगी. लाड़ो को भी ऐसी ही दबंग बनाऊंगी — दब्बू नहीं.

तो मैं सेठ अरोड़ा के वहां क्यों जाऊं. फातमाबी का इशारा कुछ ऐसा ही ग़लत बात की ओर था — शायद, नहीं, मंगती नहीं हूं मैं. मज़दूरनी हूं. मेहनत-मज़ूरी करके इतनी उम्र काट दी तो अब जीवन में दाग़ लगने जैसा कोई काम क्यों करूं? हां, यों ही कोई अधिक पैसे क्यों लुटाएगा किसी औरत पर; यों...

'झुग्गी में लाड़ो बिटियां बाट जोह रही होगी. लाड़ो! तेरे लिए बिस्कुट और फटाके लाने है ना. पगार बैंक में जमा हो गयी है — लेकर अभी आयी. कटोरी में घाट रखी है, खा लेना — कह कर निकली हूं. शरीर बुखार से अभी भी तप रहा है.'

बैंक आ गया. अभी-अभी ही खुला है. भीड़ कम थी. लाइन में पांच-छह औरतें ही खड़ी हैं. उसने अपनी डायरी और परची संभाल ली और खड़ी हो गयी.

लघुकथा

नकारात्मक ऊर्जा

✍ केदारनाथ 'सविता'

रामलाल वर्मा छात्र जीवन में साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति थे. सरकारी कार्यालय से बड़े बाबू पद से रिटायर होने के बाद उन्होंने अपने पुराने बक्सों को खोलना-देखना शुरू किया. उसमें साहित्यिक पत्रिकाएं, नामचीन लेखकों कवियों की पुस्तकें थीं. यद्यपि वे इन्हें पहले पढ़ चुके थे तथापि अब वे पुनः उन्हें पढ़ने व छांटने लगे. कुछ लेख व कहानियां उन्होंने लिख भी डालीं. कई तो उनके नाम से पत्रिकाओं में छप भी गयीं. आकाशवाणी से कहानियों का प्रसारण भी उनकी आवाज़ में हुआ. उन्हें जो पारिश्रमिक मिलता व पेंशन का भी आधा हिस्सा नयी पुस्तकों के ख़रीदने में व्यय हो जाता. उनका इस अवस्था में क़िताबी कीड़ा बनना व अपने आप में व्यस्त रहने की आदत से उनकी पत्नी व बहू को ख़राब लगता था.

बहू के अनुसार उन पुरानी क़िताबों से घर में नकारात्मक ऊर्जा फैलती थी.

फिर भी वे रिटायरमेंट के बाद पंद्रह वर्षों तक जीवित रहे और लिखते-पढ़ते रहे.

उन्हें और कोई व्यसन-पान, सुर्ती, तंबाकू, सिगरेट, गुटका आदि का न था.

उनके देहांत के बाद धीरे-धीरे उनकी क़िताबें, डायरियां घर वालों ने रद्दी वाले के हाथ तौल कर बेच दीं.

उसके पांच वर्ष बाद उनके घर विश्वविद्यालय के छात्रों का एक दल शोधकार्य हेतु आया. उनमें से एक छात्र ने कहा — 'हम लोग स्व. रामलाल वर्मा के लेखन व साहित्य पर शोधकार्य कर रहे हैं. हमें उनकी पुस्तकें और हस्तलिखित जो भी सामग्री हो उपलब्ध करा दीजिए. हम उनका अच्छा मूल्य देने को तैयार हैं.' घर के लोग अब एक-दूसरे का मुंह देखने लगे.

पुलिस चौकी रोड, लालडिग्गी, सिंहगढ़ गली (चिकाने टोला), मीरजापुर- २३१००१ (उ.प्र.). मो.९९३५६८५०६८

तभी ऐसा लगा कि लाड़ो उसे पुकार रही है — 'मां! जल्दी जाओ ना. भूख लगी' — और वह उत्तर में ज़ोर से बोल पड़ी — 'बस, अभी आयी लाड़ो.'

लाइन में लगी औरतों ने सुना. सभी उसे घूरने लगीं. उसे अपनी ग़लती का अहसास हुआ — बाई! छोटी-सी बच्ची को अकेली छोड़कर आयी हूं. वही बात ध्यान में रह गयी.

किसी ने उसकी सफ़ाई पर विशेष ध्यान नहीं दिया भीड़ बढ़ गयी थी. औरतें धक्का-मुक्की करके आगे निकलने का प्रयास करने लगीं. सभी को जल्दी थी. वह संभल कर खड़ी हुई. डायरी और फ़ॉर्म संभाल कर हाथ में थामे रही. फिर पीछे से धक्का आया. संभली! आगे की लाइन की तरफ़ देखा. कितनी देर से वह वहीं पर खड़ी है. कितनी औरतें पैसे लेकर चली भी गयीं. रसूखदार लोगों के लिए तो लाइन होती ही नहीं.

बढ़ती भीड़, धक्कम पेल, जेठ की गर्मी. पंखों को भी पसीना आ रहा था. ऊपर से भूख और बुखार की मार... चक्कर आया. गिर पड़ी धड़ाम. लोगों ने उठाकर बेंच पर सुला दिया.

लाइन का अजगर सरर-सरर आगे सरकता रहा.

वह बड़बड़ाई — बस अभी आयी लाड़ो! और लोगों ने सुनी एक हिचकी. सुरक्षा गार्ड ने बैंक मैनेज़र को कुछ कहा. वह हड़बड़ाता हुआ आया फ़ोन खटखटाए. सूं... सूं.. गुर्राती हुई १०८ आयी और उसे लेकर भाग गयी.

हां, नन्ही लाड़ो, ज़रूर बाट जोह रही होगी. किंतु अब वह नही आयेगी.

२/१५२ साकेत नगर, ब्यावर, अजमेर (राज.)

किरपाले काकू की जेल यात्रा

ओमप्रकाश मिश्र

जन्म - १३ सितंबर १९७५
शिक्षा - एम.एससी. और बीजेएमसी.

सपने में भी किसी ने नहीं सोचा था कि किरपाले काकू को एक दिन जेल जाना पड़ेगा, किंतु ऐसा हो गया. ...और अब किरपाले काकू जेल में हैं. जिस दिन से वे जेल गये, उस दिन से उनके गांव सोहरबा में अजीब-सा तनाव बना हुआ है.

बुधई यह क़िस्सा बताते हुए कह रहे थे कि किरपाले काकू ने जो किया, वह ठीक ही किया. जगतदेव की तरह कायरता तो नहीं दिखायी. उन्होंने परिस्थितियों से पलायन करने की बजाय, संघर्ष का रास्ता अपनाया, भले ही वह क़ानून की नज़र में ग़लत हो. जगतदेव ने तो जीवन से हार मानकर गले में फांसी का फंदा लगाकर अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर ली. यह भी नहीं सोचा कि उनके बाद मासूम बच्चों का क्या होगा? पत्नी का क्या होगा? बेचारी मेहरारू अब कलप रही है कि वह दो बच्चों का लालन-पालन कैसे करेगी?

सोहरबा के बुधईराम, जिन्हें सब लोग बुधई के नाम से ही जानते हैं, वह किरपाले काकू के नज़दीकी व्यक्तियों में हैं. उन्होंने बताया कि किरपाले काकू के दो भाई भी हैं, जो सरकारी नौकर हैं. पिता की मृत्यु के बाद भाइयों के बीच जब बंटवारा हुआ तो किरपाले काकू के हिस्से में पांच एकड़ ज़मीन आयी, जिनमें से एक एकड़ बंजर-बगार थी. चार एकड़ में ही वह खेती कर पाते थे. उसी से उनकी जीवनचर्या चलती थी.

किरपाले काकू हों, चाहे जगतदेव या फिर चाहे बुधई, ये सब किसान हैं. इन्हें आप भारतीय किसान के प्रतिनिधि भी कह सकते हैं. शताब्दियों पूर्व जैसे तरह किसान फटेहाल थे, ठीक उसी तरह किरपाले काकू और उनके समकालीन किसान भाई तंगहाल हैं. समस्याओं से जूझ रहे हैं. आत्महत्या कर रहे हैं, कुछ ऐसा ही तो बुधई कह रहे थे.

परिचय

प्रकाशन : ज्ञानोदय, कथाक्रम, पूर्वग्रह, साक्षात्कार, हिंदुस्तानी जुबान, कनाडा की वेब पत्रिका वसुधा, राष्ट्रधर्म आदि पत्रिकाओं मेकहानियां प्रकाशित.

विशेष : साहित्य अकादमी मप्र भोपाल की पांडुलिपि प्रकाशन योजना के तहत कहानी संग्रह 'वज्रपातऽ प्रकाशित.

संप्रति : साहित्यिक पत्रिका उपनयन का संपादन

किरपाले काकू का पूरा जीवन, उनकी घर-गृहस्थी, सब कुछ कृषि और प्रकृति पर ही निर्भर है. खेती-किसानी ही उनके लिए प्रार्थना है, उनकी शक्ति और भक्ति है. कृषि ही किरपाले काकू की निद्रा तथा जागरण है. खेती का दुश्मन काकू का दुश्मन है. यूं समझिए कि समस्त किसान का दुश्मन है.

पिछले कुछ वर्षों से काकू की ज़ुबान पर एक कहावत बैठी हुई है, जिसे वह जब-तब दुहराते रहते हैं —

'दिन भर मांगै तौ दिया भर, रात भर मांगै तौ दिया भर...'

जाने क्यों किस्मत भी रूठी हुई है— किरपाले काकू से. ठीक से खेती भी नहीं होती..!

किरपाले काकू को फ़ुरसत के क्षणों में अक्सर सजीवना की याद आती है. सजीवना...गांव का व्यापारी.

कुछ ही वर्षों की बात है, सजीवना सिर पर बांस की टोकरी रखकर गुड़-चना, गट्टा, नून-तेल बेचता हुआ गांव-गांव फेरी लगाता था. अब नगर का बहुत बड़ा सेठ हो गया है, लेकिन किरपाले काकू जस के तस रह गये. बल्कि अब तो दिनोदिन तंगहाली बढ़ती ही जा रही है. सुख-चैन तो जैसे उनके लिए चंद्रलोक की बातें हों.

यह सब बताते हुए बुधई थोड़ा भावुक होकर रुके, फिर गहरी सांस भरकर पुन: किरपाले काकू की कहानी बताने लगे. कुछ माह पहले किरपाले काकू अपने खलिहान में किराये के थ्रेशर से गेहूं की गहाई कर रहे थे.

उसी दरम्यान बिजली विभाग का उड़न-दस्ता पहुंच गया. फिर क्या था, कटिया फंसाने के जुर्म में किरपाले काकू पर मुकद्दमा हो गया और वह जेल चले गये. बीस हज़ार रुपये जुर्माना भरकर बाहर आये, लेकिन मन खिन्न हो गया.

किरपाले काकू ने थ्रेशर मालिक से थ्रेशर को डीज़ल वाली मशीन से चलाने के लिए कहा था, परंतु थ्रेशर मालिक ने अपनी बात ऊपर रख दी कि 'कुछ नहीं होगा, कोई नहीं आएगा...' और थ्रेशर को बिजली से चलाने के लिए कटिया फंसा लिया. वह तो ले-देकर बरी हो गया किंतु फंस गये किरपाले काकू और जेल भी हो आये. उस वर्ष की पूरी खेती कोर्ट-कचहरी के चक्कर में स्वाहा हो गयी. किरपाले काकू खेती की कमाई से महज खाद-बीज के कर्ज़ का ब्याज ही चुका पाते थे, किंतु इस बार ऐसा भी नहीं हो सका और सोसायटी का कर्जा दोगुना हो गया. सरकार और बैंक के नुमाइंदे सूदखोरी के नये-नये तरीक़े ढूंढ़ रहे थे और किरपाले काकू का पूरा परिवार एक-एक रुपये के लिए मोहताज होने लगा. सचमुच बैंक का कर्ज जिसने एक बार ले लिया, वह उससे मुक्त ही नहीं हो पाता. सुरसा के मुंह की तरह कर्ज बढ़ता ही जाता है. आज़ादी के बाद से बैंकों में साहूकारी प्रथा पल रही है. अब उनके नाखून भी किरपाले काकू के कर्ज की तरह बढ़ने लगे हैं.

जगतदेव भी इसी चक्रव्यूह मे फंस गये थे और फिर बैंक के खूनी पंजों का शिकार हो गये. दरअसल, जगतदेव ने मज़दूरों की समस्या को देखते हुए खेती करने के लिए बैंक से लोन लेकर ट्रैक्टर ले लिया था.

पहले तो उन्हें सब्ज़बाग दिखाया गया कि आसान किश्तों में ट्रैक्टर दिया जा रहा है. जब उन्होंने ट्रैक्टर ले लिया तो पूरा मामला ही उलट गया. फिर शुरू हुई किश्तों की वसूली. एक दिन भी लेट हो जाए तो हज़ारों रुपये ब्याज चढ़ जाता. ब्याज चुकाते-चुकाते जगतदेव थक गये. लाखों रुपये जमा करने के बाद भी मूल कर्जा जस का तस बना रहा.

एक दिन सुबह-सुबह जगतदेव खेत की मेड़ पर मौजूद आम के पेड़ की एक शाखा में फांसी के फंदे से लटकते हुए पाये गये. पूरे गांव में कोहराम मच गया था. अभी इससे गांव के लोग उबरे भी नहीं थे कि किरपाले काकू को बिजली चोरी के जुर्म में जेल की यात्रा करनी पड़ गयी. आख़िर हो क्या गया सोहरबा गांव को? किसकी नज़र लग गयी? अभी तक तो ऐसा नहीं हुआ था? अब जाने क्या-क्या देखने को मिले?

...जितने मुंह उतनी बातें सुनने को मिल रही थीं. हर

कोई सशंकित था और अजीब-सा तनाव महसूस कर रहा था.

बहरहाल किरपाले काकू के बच्चे बड़े हो रहे थे. उसी अनुपात में महंगाई और उनके ख़र्च भी बढ़ रहे थे. आमदनी वही जस की तस — 'दिन भर मांगै तौ दिया भर, रात भर मांगै तौ दिया भर...' गाढ़े दिनों में भाइयों ने भी किनारा कर लिया. ससुराल वालों की मदद से किरपाले काकू जैसे-तैसे जेल से बाहर आये थे और आते ही पछीत वाला खेत सजीवना के हाथों गिरवी कर दिया. इसके बाद एक बार फिर खेती करने की तैयारी मे जुट गये थे.

इन दिनों किरपाले काकू की तबियत कुछ ठीक नहीं रहती. फिर भी वह प्रतिदिन सुबह-सुबह खाद-बीज के चक्कर में सोसायटी जाते हैं और शाम के वक़्त मुंह लटकाए लौट आते हैं. यह सब काकू की पत्नी श्यामा देख-समझ रही थी. एक दिन जब उससे रहा न गया तो उसने पूछ ही लिया--'तबियत ठीक नहीं है क्या?' काकू कुछ नहीं बोले. श्यामा को एक नज़र देख आसमान की तरफ़ देखने लगे.

श्यामा ने फिर ढिंठाई की, 'खाद-बीज का क्या हुआ? अभी नहीं मिला क्या?'

'क्या कहूं, बोरे तो बहुत आते-जाते हैं पर जाने कहां?... हमें तो सिर्फ़ तारीख़ ही मिलती है.' किरपाले काकू ने भारी मन से इतना ही जवाब दिया और फिर उठकर गौशाला की तरफ़ चल दिये.

आषाढ़ के दिन बीत चुके थे, लेकिन अभी तक खेती लायक पानी नहीं बरसा था. हर तरफ़ हाय-तौबा होने लगी.

कुएं, बावली, नदी तालाब, पोखरे सब सूखे हुए थे. किरपाले काकू भी अपनी बिटिया रानी की शादी की चिंता में तिल-तिल कर सूखे जा रहे थे. आधे सावन एक दिन किरपाले काकू गाय और बछड़े को बांधने के लिए पुराने जर्जर खूंटों की जगह नये खूंटे गाड़ने के लिए दर खोद रहे थे. उमस भरी गर्मी उनकी बेचैनी बढ़ाने में सहायक हो रही थी. गाय के लिए खूंटे गाड़े जा रहे थे. अभी बछड़े के लिए भी खूंटा गाड़ना शेष था कि तभी अचानक बादल घिरने लगे. बादलों को देख काकू का मन मयूर अंदर ही अंदर नाच उठा. वे जल्दी-जल्दी खूंटे का दर खोदने लगे. मिनटों में ही अंधेरा छा गया. बिजली चमकने लगी. बादल गरज़ने लगे. बड़ी-बड़ी, मोटी-मोटी, ठंडी-ठंडी बूंदें गिरने लगीं. ऐसा किरपाले काकू ने महसूस किया. अब उनके हाथों की गति और बढ़ गयी. कुछ ही पलों में झमाझम बारिश होने लगी. जल्दी-जल्दी खूंटा गाड़कर काकू ओरिया की छांव के नीचे भागे. उनके कपड़े गीले हो चुके थे. सिर के उलझे बालों से पानी चूने लगा. गले से गमछा निकालकर उन्होंने मुंह पोछा और मुरैठा बांध लिया. मिट्टी की सोंधी-सोंधी महक किरपाले काकू को आत्मविभोर करने लगी थी.

काकू ने एक पल के लिए आंख बंदकर मन ही मन भगवान को धन्यवाद किया और प्रार्थना किये – 'ख़ूब बरसा भगमान..., एतना बरसा कि धरती के साथ सगले किसान अघाय जांय....' दूसरे ही पल उन्होंने महसूस किया कि उनकी ही तरह सभी किसानों की आंखों में हज़ारों सपने नाचने लगे थे. मसलन बिटिया रानी की शादी, बेटों की पढ़ाई, कर्ज का भुगतान... आत्म विभोर काकू सहसा मुखर होकर गा उठे — 'बरसा भगमान पकै धरिया, खाय किसान मरै बनिया (व्यापारी)...' तभी अंदर से श्यामा काकी और बच्चे भी आ गये. उन्होंने भी सुर में सुर मिलाया. काकू को लगा कि पूरी दुनिया के किसान उनके सुर में सुर मिला रहे हैं. बच्चे हुलसते-कुलकते हुए बारिश में भींगने के लिए घर

ग़ज़ल

✍ **शाहिद अब्बास अब्बासी**

सदा मोड़ पर रुकी ज़िंदगी,
असमंजस में पड़ी ज़िंदगी.

सिखा न पाया इसे सलीका,
रही रही बेतुकी ज़िंदगी.

ठोस नींव के भ्रम पाले हैं,
मगर रेत पर टिकी ज़िंदगी.

रोज़ रिझाए मीठे सपने,
रोज़ लहक कर बढ़ी ज़िंदगी

ग़लत सितारे गर्दिश में थे,
जब शाहिद को मिली ज़िंदगी

पांडिचेरी विश्वविद्यालय,
पुदुशेरी ६०५०१४
ईमेल : abbasi.cpee@gmail.com

से बाहर दौड़ लगा दिये. अभी वह ठीक से भीगे भी नहीं थे कि बारिश बंद हो गयी.

किरपाले काकू का विहंसा चेहरा अचानक चिंतित हो उठा. ओरिया से बाहर निकलकर आसमान की तरफ़ ताकने लगे. बादल तितर-बितर होकर दूर जाने लगे थे. उन्होंने हथेली फैलायी तो वर्षा की एक बूंद आकर उसमें गिर गयी. काकू ने मुट्ठी बंद कर ली और तेज़ क़दमों के साथ ओसारी तक पहुंचे. वहां रखी कुदाल उठायी और खेत की तरफ़ दौड़े. गिरते-परते खेत पहुंचे. जगह-जगह कुदाल से ख़ुदाई किये और निराश होकर मेड़ पर बैठ गये. वजह वर्षा का पानी ज़मीन के अंदर तक नमी नहीं पैदा कर सका था.

किरपालू काकू सिर पर हाथ रखे थके-हारे से यूं ही बैठे रहे. पीछे-पीछे दौड़ी आयीं श्यामा काकी भी सांत्वना देती हुई उनके क़रीब बैठ गयीं. किरपाले काकू के भीतर हाहाकार मचा हुआ था, क्योंकि बादलों के रहमोकरम पर ही किसान जीता और मरता है. काकू की सांसें लोहार की धौंकनी की तरह चल रही थीं. अचानक वह छाती पीटकर चीत्कार उठे — 'हे भगमान..! तू भी बाज़ार और सत्ता के षडयंत्र में शामिल हो गया..?'

भारी मन से काकू पत्नी श्यामा के साथ घर लौट आये. खटिया में बैठकर सिरहाने रखे रेडियो को चालू कर दिया. उसमें समाचार आ रहा था — 'बिहार में आयी बाढ़ से किसानों की फ़सलें नष्ट हो गयीं. जान-मान को भी बहुत नुकसान पहुंचा है. वहीं विंध्य अंचल का रीवा जिला सूखे की चपेट में है...'

समाचार चल रहा था और किरपाले काकू अपना माथा पीट रहे थे — कितना त्रासद है किसान बनना, कहीं बाढ़ तो कहीं सूखा. किसान अपने खेत का प्याज एक-दो रुपये प्रति किलोग्राम नहीं बेच पाता, जबकि उसी प्याज को व्यापारी चालीस से अस्सी रुपये प्रति किलोग्राम तक बिक्री कर मज़े उड़ाता है.

काकू वर्षा की कमी से खरीफ़ की फ़सल नहीं ले सके. बढ़ते कर्ज के दबाव में काकू ने अपना दिल पत्थर का करके गिरवी खेत बेच दिया. फिर भी आशा की डोर बांधे हुए थे. कभी न कभी उनके दिन फिरेंगे. प्रकृति की अद्भुत लीला है. कुआर में दो-तीन दिनों तक झमाझम बारिश हुई. फिर क्या था, सभी किसानों के साथ किरपाले काकू ने भी रबी फ़सल की बोनी कर दी.

...और फिर समय आने पर एक दिन किरपाले काकू फ़सल की कटायी-गहायी कर खलिहान में 'रासि' (उपज) नाप रहे थे. तभी सोसायटी के अधिकारी दल-बल के साथ जीप भर आ धमके. उनके पीछे सजीवना भी ढिठाई से खड़ा रहा. किरपाले काकू ताड़ गये कि सोसायटी एवं सजीवना का कर्ज चुकाना अभी शेष था.

अधिकारियों ने काकू का गल्ला वसूली के तौर पर जबरन कब्जिया लिया और जीप में भरने लगे. यह ख़बर जब श्यामा काकी तक पहुंची, तब वह तवा की रोटी तवे पर घरी की रोटी घरी पर छोड़ रोते-विलखते बच्चों के साथ खलिहान में आ गिरीं. अधिकारियों के आगे आरजू-मिन्नत करने लगीं कि अनाज के बिना बच्चे भूखे मर जायेंगे. फिर भी सरकार के नुमाइंदों को दया नहीं आयी. वे अनाज के बोरे जीप में लादते रहे और पूरा गांव आकर तमाशबीन खड़ा रहा.

बुधई ने यह पूरी राम कहानी बताते हुए कहा कि इस घटना से सुन्न पड़ गये किरपाले काकू की धमनियों में सहसा लहू उबाल लेने लगा. आंसुओं से डबडबाई आंखें लाल सुर्ख हो गयीं. उनकी मुट्ठियां बांस की लाठी पर कस गयीं. और फिर, काकू ने आव देखा न ताव, सरकार के नुमाइंदों पर तड़ातड़ लाठी बरसाना शुरू कर दिया — 'ले कर वसूली...और ले...ले...'

अब क्या था, वसूली के लिए आये अधिकारी-कर्मचारी भाग खड़े हुए. सजीवना भी जान हथेली पर लेकर भागा. हालांकि तब तक हरेक के शरीर पर काकू की लाठी के निशान बन चुके थे. पूरा गांव प्रसन्न था, लेकिन शाम के वक़्त अंधेरा घिरते ही पुलिस का दल डंडा-बंदूकों के साथ चार गाड़ियों में आ पहुंचा. ओसारी पर बैठे किरपाले काकू का चेचुरा पकड़कर एक ने घसीट लिया और पुलिस वाहन में ले जाकर किसी गठरी की तरह फेंक दिया और कहा — 'चल अब थाने में तेरी गुंडई उतारूंगा...'

तब से किरपाले काकू जेल में हैं. ...और उनका बेटा कर्ज़ चुकाने के लिए पढ़ाई-लिखाई के साथ ही गांव-घर छोड़कर शहर चला गया. इधर चार साल से उसकी कोई ख़बर नहीं मिली है.

ग्राम-पोस्ट बांस, टोला अमवा
थाना गढ़, जिला-रीवा (म. प्र.)
मो. : ९२२९९९१९००

आमने-सामने

'दुनिया नहीं अंधेरी होगी!'

✍ देवेंद्र कुमार पाठक

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय, अजीत श्रीवास्तव, डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी और श्याम सुंदर निगम से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है देवेंद्र कुमार पाठक की आत्मरचना.

कमोबेश समूचा असफल, निरर्थक और नामालूम-सा लेखन. गांव-क़स्बे के दलित-उत्पीड़ित मजूर-किसानों, स्त्रियों के संघर्षरत जीवन की विसंगतियों, उम्मीदों और उनकी सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को समझता-बूझता. अपने अलग ढंग-ढर्रे का लेखन... खेती-किसानी, बुवाई-जुताई, निराई-गोड़ाई, सिंचाई, रखवाली, कीट-पतंगों, चिड़िया-चूहों और बीज-खाद, क़र्ज-ब्याज जैसी कितने किस्म की आपदाओं से निबटना और घर-परछी, छानी-छप्पर, कपड़ों-लत्तों, तीज-त्यौहारों, नात-पाहुन, पास-पड़ोस,जाट-जमात, खैर-खूंट, मनौती-चढ़ोत्तरी, गोरू-बछेरु, ब्याह-बारात, तेरही-बरसी, हारी-बीमारी जैसी ज़िम्मेदारियों को निबाहना. इन जीवन-सत्यों, अनुभवों को हठ कर लिखना और उसे बचे-खुचे और गिनती में कम से कमतर होते पढ़वय्यों के सामने लाना. तब बरसों की मेहनत का कोई अर्थ नहीं रह जाता, जब आपकी भेंट में दी गयी क़िताब, जिसे आपने पेट काटकर जोड़े-जुगाड़े रुपये प्रकाशक को देकर छपवाया हो, कुछ दिन बाद कबाड़ी के ढेर में मिले!

क़िताबें जिनके न लोकार्पण हुए, न कोई चर्चा फिर भी लिखता हूं. कितना-कुछ अप्रकाशित पड़ा है. न छपने की कोई सार्थकता, न अनछपे से कोई नुकसान! पर करे क्या कोई, चाहकर भी नहीं छूटता लिखना भी अपना. कुछ ऐसे ही, मजूरों की बीड़ी-जर्दे और गुटके की बुरी लत जैसे ही लगता है अब लिखना-विखना;

छोटी महानदी,जो सोननदी से मिल 'बाणसागर बांध' को जन्म देती है; कटनी जिले की जीवन रेखा है. जिसकी बलुआ देह छलनी हो रही है. शहर का अजगर मुंह बाये फैल-पसर रहा है. खेती की ज़मीन बेच रहे हैं लोग. गांवों के स्कूलों में खाना-कपड़ा, क़िताब-साइकल के कारण बच्चे दर्ज़ हैं.

छोटी महानदी, सोन, उमरार नदियों के आर-पार

मध्य प्रदेश के कटनी जिले के गांव भुड़सा में २७ अगस्त १९५६ को एक किसान परिवार में जन्म.

शिक्षा-M.A.B.T.C. हिंदी शिक्षक पद से २०१७ में सेवानिवृत्त. नाट्य लेखन को छोड़ कमोबेश सभी विधाओं में लिखा. 'महरूम' तखल्लुस से ग़ज़लें भी लिखीं.

२ उपन्यास (विधर्मी, अदना-सा आदमी), ४ कहानी संग्रह (मुहिम, मरी खाल : आखिरी ताल, धरम धरे को दंड, चनसुरिया का सुख), १-१ व्यंग्य, ग़ज़ल और गीत-नवगीत संग्रह, (दिल का मामला है, दुनिया नहीं अंधेरी होगी, ओढ़ने को आस्मां है), एक संग्रह 'केंद्र में नवगीत' का संपादन.

'वागर्थ', 'नया ज्ञानोदय', 'अक्षरपर्व', 'अन्यथा', 'वीणा', 'कथन', 'नवनीत', 'अवकाश', 'शिखर वार्ता', 'हंस', 'भास्कर' आदि पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. आकाशवाणी, दूरदर्शन से प्रसारित. 'दुष्यंतकुमार पुरस्कार','पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी पुरस्कार' आदि कई पुरस्कारों से सम्मानित. कमोबेश समूचा लेखन गांव-क़स्बे के पिछड़े, शोषित-उत्पीड़ितों, खेतिहर मजूर-किसानों के जीवन की व्यथा-विसंगतियों, संघर्षों-उम्मीदों और सामाजिक,आर्थिक समस्याओं पर केंद्रित.

सैकड़ों गांव-गंवइयों में आबाद ग़रीब, पिछड़े, धर्म-जाति की गुंजलक में जकड़े और मुट्ठी भर तगड़े अगड़ों के पीछे आंख़ मूंद भेड़िया धसान रेंगती खेतिहर मजूरों, छोटे किसानों, क़स्बों में खटते असंगठित दिहाड़ियों और बमुश्किल गुज़र करनेवालों की ज़िंदगी की चाहत, अभाव, ज़द्दोज़हद है, उस पर भी उम्मीद कि बहुरेंगे सुदिन; कुछ तो होंगे सपने सच! कोई तो होगा, लाखों बेईमानों, बतलबरों, खुदगर्ज़, और हरामखोरों में से एक भलामानुष, बात का धनी नेता-अगुआ, जो हमारी सुध लेगा; ऊपर तक हमारे सच को पहुंचायेगा, लड़ेगा; हमारी भूख-प्यास, हारी-बीमारी, बेकारी-लाचारी और तमाम आपदा-दुखों, अभावों पर सवाल उठायेगा. हमारे लिए कुछ सुख-सुविधाएं लाकर, हमें राहत देगा. दशकों से एक ही ठौर-ठीये पर ठहरी-ठिठकी उनकी ज़िंदगी को कुछ चल-बढ़ सकने लायक तो बनायेगा. ऐसे ही लोगों के जीवन की ज़रूरतों, इन सब मुद्दों पर कमतर ही सही पर इतना भी लिखे का सुकून देह अहसास या लेखक होने-कहलाने का मुझे मुगालता है.

जर्जर, स्थूलकाय, वात पीड़िता पत्नी के साथ उम्र के सातवें दशक में भारी देहधारी, बीमार, अकेला बेऔलाद लेखक-आदमी करे भी क्या?

बड़े आदमीनुमा लेखकों की बड़ी बातें! हम तो देश के उन करोड़ों बहुसंख्यकों में से एक हैं, जिनका न कोई अता-पता, न पहचान-चर्चा; न कोई खूंटा-ठीया. न कोई गुट-संगाती, न चेला-चपाटी. न अपनी कोई खानदानी परंपरा, न विरासत-थाती. नहीं गाया कभी भी राग दरबारी किसी की सहमति का, न किया आसरा किसी साहित्यिक बाबा-मठाधीश की सेवा से संगति का; भले ही लिखा-कहा अन्याय-शोषण के विरोध में; बांधा नहीं गंडा किसी दल-संगठन का. न कभी हो सके हमप्याला-हमनिवाला किसी बिरादरी में. गाते रहे अकेले मेहनतकश की पीर, जिस पर नहीं देता कोई ध्यान, बस देती रहती है ओहदेदार, नामी-खानदानी, दल-बल-नायक, छल-छद्म में दक्ष, बाहुबलियों की लंबी जुबान, थोथे बयान उतार लाते हैं जो धरती पर अपने बड़बोलों से सातों आसमान. गज़ब की हाज़िर ज़वाबियों और लफ़्फ़ाजियों के कलाबाज; जिनने हथियाए तख्तो-ताज़; वे हांकते हैं हर मौक़े पर अपनी मनबतियां, नहीं सुनते-देखते मेहनतकशों की दुर्गतियां...

खरी सच्चाई एकदम उल्टा; अब मामूली आदमी की व्यथा-कथा, नहीं कोई पढ़ता, सुनता-गुनता. आज भी बाज़ार का मारा खेतिहर, जला देता है, समूचा खेत टमाटर का, पेड़ मौसम्मी के बारह बरस तक पाले-पोसे. 'पूस की रात' के घीसू की तरह. गंवई-गांव का मनई पलायन कर जाता है

शहर के कांक्रीट जंगल में, दिहाड़ी में खपने को या कर लेता है गलबहिंया चुपचाप मौत से.

जो कुछ आंखिन देखा, कुछ भुगता, वही लिखा. वही हल-बैल, खेत-खलिहान, प्यास-पसीना, लू-घाम, बारिश-सर्दी, सूखा-बाढ़, हल्कानी-हीच, जुल्म-शोषण, अन्याय, जात-जमात, छूत-छात, व्याह-बारात, बीवी-बच्चे और मामूली आदमी का जीवट, जिजीविषा, जुझारूपन और ज़िंदगी पर भरोसा ...उपन्यास 'विधर्मी' (दुष्यंत कुमार पुरस्कार प्राप्त); 'अदना सा आदमी'; कहानी संग्रह -'मुहिम',' मरी खाल: आखिरी ताल', 'चनसुरिया का सुख', और 'धर्म धरे को दंड'; व्यंग्य संग्रह- 'कुत्ताघसीटी' और 'दिल का मामला है;' कविता की क़िताबें - 'दुनिया नहीं अंधेरी होगी' और 'ओढ़ने को आस्मां है. गिनी-चुनी पत्रिकाओं ने मेरी रचनाएं प्रकाशित की हैं. पर कुछेक ने तो कभी नहीं छापा. ख़ैर, किसी का लौटाया, किसी ने छापा. अब नाम-वाम क्या लूं, कोई फ़र्क नहीं पड़ता. रचना से बड़ी नहीं होती कोई पत्रिका, न ही लेखक या कोई पुरस्कार-प्रशस्ति. किसी लेखक के जीवन अनुभव, रचनात्मक संवेदन और उसकी अपनी सोच-समझ की गहनता, व्यापकता ही रचना को विशिष्ट बनाती है.

कई विधाओं में लिखने के चलते हर विधा में कमतर ही लिखा. हां,नाट्य-लेखन नहीं किया क्योंकि मेरा अपना आग्रह या मान्यता है कि मंचन के लिए ही नाट्य लेखन हो, तो कोई सार्थकता है. कैसा विरोधाभास है कि जिस सोलह साल की वय के छात्र ने ग्यारहवीं में सुभद्राकुमारी चौहान की कहानी 'कदंब के फूल' का नाट्य-रूपांतरण कर स्कूल में दो बार मंचन किया और उसमें वृद्धा सास की भूमिका निभाही पुरस्कार जीते, जिसने अपनी इक्कीस साल की उम्र में गांव के युवाओं को साथ ले बरसों तक गांव-गांव के मेलों में नौटंकी खेली, उसने एक भी नाट्य लेखन न कर कथा, कविता, व्यंग्य, निबंध, लेख समीक्षादि सब लिखा. समीक्षा करने का सुफल यह कि एक बड़े लेखक की क़िताब की दो टूक समीक्षा लिख दी तो उन्होंने पत्र लिखकर अपना क़द दिखाकर हमारी नाप-जोख कर दी. मंचन के अवसर नहीं मिले, न ही मेरी आजीविका और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों ने अवसरों की तलाश ही की. रचनाएं और समीक्षार्थ क़िताबें भेजने में भी अलाल ठहरे.

कविता-पाठ,गीत-गायन और तमाम तरह के लोकगीत गाने वाले इस गंवई लेखक ने कविता में ज़रूर उस कौशल को अपनाकर 'करमा', कजरी लिखे, जिन्हें 'कथन' ने प्रकाशित किया और कवि-सम्मेलनों में गाये भी पर मंच की कविताई और कवि बंधुओं के तौर-तेवर अपने को कुछ भाये-सुहाये ही नहीं. यूं भी कह सकते हैं कि हम ही मंच के क़ाबिल न थे.

लेखकों से मिल-जुल कर कुछ साधने-बांधने की कला भी न आयी. गिनती के लेखकों से अपनी जान-पहचान, मिलना हुआ. 'परसाईजी', ज्ञानरंजन', 'गिरिराज किशोर', 'काशीनाथ सिंह', 'कमलाप्रसाद', 'नागार्जुन', 'रमेश रंजक', 'भगवत रावत', 'मायाराम सुरजन', 'राजेश जोशी' आदि से एकाध बार मिल सका. 'राम सेंगर', 'अनूप अशेष', 'हरीश निगम', 'सुबोध श्रीवास्तव', 'अनिल खंपरिया', 'नंदलाल सिंह', 'शलभ श्रीराम सिंह' से ख़ूब स्नेह-प्रोत्साहन मिला.

घूमना-फिरना, तीर्थाटन, सिद्ध-सन्यासी, कथा-भागवत, जप-तप और सियासती लोगों से भी कुछ अंतरंगता हम नहीं कर पाये. अब तक जो चौंसठ बरस की ज़िंदगी गुज़री या हमने गुज़ारी उसमें हिंदी-अध्यापन, साहित्य सर्जन के लगभग चार दशक हैं पर लेखन गांव-क़स्बे से आगे कमतर ही है.

सवर्ण ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी स्वजाति तो क्या, परिवार, भाई, रिश्तेदार भी हमसे ख़फ़ा रहते हैं. हों भी क्यों न, जब आप अपनी ही जाति के खिलाफ़, पूजा-पुरोहिताई, पाखंड, कथा-भागवत का विरोध करें; दलित-पिछड़ी, ओछी जातियों की तरफ़दारी में लिखें-बोलें, तो भला बिरादरी के लोग आपकी निंदा-अवमानना तो करेंगे ही. ब्राह्मण होकर भी आप ब्राह्मण-संगठन के सक्रिय सदस्य नहीं बनते, परशुराम जयंती, जगन्नाथ रथयात्रा में शामिल नहीं होते, मंदिर नहीं जाते. इतना ही क्यों आप तो संतों-महंतों, हरि-कथा वाचकों को सुनने नहीं जाते. किसे सुहायेंगे आप....?

सघन शहरी संस्कार और सुख संसाधनों की जीवन-चर्या से परे, शहर में रहकर भी अब तक शहरी न हुआ; गंवई संस्कार छूट न सके. हां, तमाम खेती-किसानी के श्रम कौशल, काम करने की आदत छूटती गयी. न गांव की बोली-बानी छूटी, न खान-पान, न खेती-किसानी, मेहनतकश कोल-चमारों और धरती-माटी का मोह-लगाव. सार यह कि न शहरी हुए, न गंवइये ही रह पाये; अधकचरे हो गये...

पिछले आठ-नौ साल से लकवाग्रस्त रहा, लिखना कम हो गया. 'नया ज्ञानोदय' में जनवरी २००७ में कहानी 'धरम धरे को दंड' प्रकाशित होने के बाद विराम ही लग गया था. स्कूल शिक्षा विभाग से मार्च २०१७ में रिटायरमेंट के बाद फिर कुछ लिखना शुरू किया है. इधर-उधर कुछ छप जाता है. एक अधूरा उपन्यास पूरा नहीं कर पा रहा. मुक्तछंद कविताओं की क़िताब भी नहीं आ पायी. विंध्या भी अब बीमार हो जाती है जब-तब. लोगों की अपनी-अपनी व्यस्तताओं के चलते अब बस पत्र-पत्रिकाओं, क़िताबों में ही वक़्त गुज़रता है. लिखना कम, पढ़ता ख़ूब हूं. ख़ूब लिखा जा रहा है, ख़ूब छप भी रही हैं क़िताबें. पाठकीयता निःसंदेह घटती जा रही है. कविता को लेकर मुग़ालते बढ़े हैं. गीत-नवगीत के कवि बिरादरी बाहर हैं. कथा लेखन समृद्ध है लेकिन देश की अर्थव्यवस्था, समाज, सियासत, सत्ता-व्यवस्था, धर्म-मज़हब, साहित्य, कला, संस्कृति, उद्योग-व्यापार, पत्रकारिता आदि को अपने कंधों पर उठाये रखने वाले देश के बहुसंख्यक संगठित-असंगठित श्रमिक, खेतिहर मज़ूर, किसान चंद पद मदांध वाग्वीरों, धर्माओं और धनकुबेरों के दुष्चक्र और दुर्नीतियों से बदहाल है साहित्य तथा लेखक हाशिये से भी बाहर है, फिर भी उम्मीद है...

'मुझसे शुरू हुई थी, मुझ पर ख़त्म कहानी मेरी होगी; एक चिराग बुझे, बुझ जाये, दुनिया नहीं अंधेरी होगी!'

✆ **१३१५, साईपुरम् कॉलोनी, रोशन नगर,**
साइंस कॉलेज़ डाकघर,
कटनी-४८३५०१ (म. प्र.)
मो.: ८१२०९१०१०५;
ईमेल : devendrakpathak.dp@gmail.com

ग़ज़लें

✍ डॉ. मनोहर अभय

(एक)

छान छप्पर ढूंढ़ता हूं,
शहर में घर ढूंढ़ता हूं.
बेचैन हूं बेचैनियों से,
दरगाह का दर ढूंढ़ता हूं.
प्यास बुझती नहीं यारो
घड़े में समुंदर ढूंढ़ता हूं.
है क़ातिलों का ज़माना
बचने का हुनर ढूंढ़ता हूं.
बातें पुरानी चल रही कब से
सुर्ख़ ताज़ी ख़बर ढूंढ़ता हूं.
जॉकिटों में पैबंद कितने
क़ाबिल रफ़ूगर ढूंढ़ता हूं.
घूमने फिरने की आदत गयी
अपनी खोयी उमर ढूंढ़ता हूं.

(दो)

ये अंधेरी रात अब बर्ख़ास्त होनी चाहिए,
रोशनी की झमाझम बरसात होनी चाहिए.
पानी उछालें ले रहा झील है ख़ुशहाल,
चांदनी की छांव में मुलाकात होनी चाहिए.
खामोशियां टूटीं बंदिनी बैठी अमराइयों में,
मुक्ति के एहसास की कुछ बात होनी चाहिए.
चक्कर लगाते हैं पड़ोसी अस्मिता को लूटने,
इस गांव में भी कहीं हवालात होनी चाहिए.
बच गया क़ातिल ऊंची अदालत उठ गयी,
दाख़िल कहां ऐ दोस्तो ! दरख़ास्त होनी चाहिए.

✆ *आर.एच-१११, गोल्डमाइन १३८-१४५, सेक्टर-२१, नेरुल, नवी मुंबई-४००७०६,*
मो. ९१६ ७१४ ८०९६

'प्रत्येक विषय अपने लिए 'फॉर्म' स्वयं चुन लेता है!'

असगर वज़ाहत

('अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा-सम्मान' से सम्मानित असगर वज़ाहत से मधु अरोड़ा की बातचीत)

✸ असगर जी, पहले तो आपको इंदु शर्मा कथा सम्मान मिलने की बहुत–बहुत बधाई. एक बात बताइए कि जब आपको इस सम्मान के लिए चुना गया और आपको सूचित किया गया तो आपने क्या महसूस किया?

आपको शायद नहीं मालूम कि इस उपन्यास की समीक्षा बहुत ख़राब छपी थी. यह भी कहा गया था कि इस उपन्यास में सब बकवास है. ऐसी स्थिति में मेरे लिए यह काफी चौंका देने वाली ख़बर थी कि इस नावेल को लोगों, लेखकों और आलोचकों ने काफी पसंद किया है और अवार्ड दे रहे हैं. ज़ाहिर है इन लोगों ने भी निगेटिव समीक्षा पढ़ी होगी पर उसका इन लोगों पर असर नहीं हुआ और अपने दिमाग़ से काम किया. यह मेरे लिए ख़ुशी की बात थी और है. इस फ़ैसले से मेरा विश्वास और पक्का हो गया कि अच्छी रचना को लंबे समय तक दबाया नहीं जा सकता. मुझे यह भी लगा कि ईमानदारी और सच्चाई से सोचने वाले लोग भी हैं. यह सोच कर ख़ुशी हुई कि मेरे लेखन से जुड़ने वाले लोग बड़ी संख्या में हैं.

✸ बचपन की घटनाएं/छवियां/या कच्ची उमर के सपने, महत्वाकांक्षाएं/ और उन सपनों का टूटना, ये सारी स्थितियां/ हर लेखक के लेखन में बार-बार आती हैं, आप इसे किस रूप में लेते हैं?

अतीत कभी पीछा नहीं छोड़ता. वह चाहे अनचाहे सबके अंदर जगमगाता रहता है. जहां तक मेरा सवाल है मैं एक ऐसी पीढ़ी का सदस्य हूं जिसका अपना घर हुआ करता था, अपना मोहल्ला होता था, शहर होता था, क़स्बा होता था. अब ऐसा नहीं है. यानी आज की युवा पीढ़ी या उसके बहुत से लोग इस अपनेपन से खाली हैं.

बचपन और लड़कपन न सिर्फ़ बार-बार रचनाओं में झांकता है बल्कि वह व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है और इस तरह लेखक की रचनाओं में सदा बना रहता है. मैं आपको अपना उदाहरण देकर बताऊं. मैं अपनी तमाम बुराइयों, अच्छाइयों के साथ अपने आपको एक ऐसा आदमी मानता हूं जो अराजक तो नहीं है पर पूरी तरह अनियोजित है. योजनाबद्धता मेरे स्वभाव में नहीं है क्योंकि मेरा बचपन और लड़कपन जिस माहौल में बीता वहां यह नहीं थी. वहां बेफ़िक्री और मस्ती थी. वहां भविष्य का डर नहीं था. वहां यह सवाल ही नहीं पैदा होता था कि कभी बुरे दिन भी आ सकते हैं. वहां जितना पैसा आता था, अनाज आता था, फल आते थे सब खा लिए या बांट दिये जाते थे क्योंकि यह पक्का विश्वास था कि आते रहेंगे.

एक मज़ेदार बात ये बताऊं कि मेरे पिताजी को जब उनके किसी काम या जायदाद या खेतीबाड़ी से पैसा मिलता था और उनका कोई कारिंदा या नौकर उनके हाथ में पैसा देता था तो वे बहुत नाराज़ होते थे. कारण यह था कि उन्हें पैसे गिनने पड़ते थे और अब्बा गणित में ही नहीं गिनती करने में बहुत कमज़ोर थे और उन्हें इसके लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था इसलिए वे आमदनी होने और पैसे दिये जाने पर नाराज़ हो जाते थे. जो पैसे देता या लाता था उससे ही कहते थे कि गिनो. इसका असर आप मानें या न मानें मेरे ऊपर कुछ इस तरह पड़ा है कि मैं लगातार दस-पंदरह मिनट तक पैसे या कुछ और गिनने का काम नहीं कर सकता या नहीं करना चाहता. अभी ईरान गया था. वहां एयरपोर्ट पर पचास डॉलर चेंज़ कराये तो बैंक वाले ने नोटों का एक गट्ठर पकड़ा दिया. मैं हैरान रह गया. पर समझ गया कि पैसा एक्सचेंज़ रेट के हिसाब से दिया जा रहा है. लेकिन मैं सच बताऊं कि बैंक के कॉउंटर पर या पीछे पड़ी कुर्सियों पर बैठ कर सारे नोट गिनने का कष्ट मैंने नहीं किया और मान लिया कि यार जो दिया है ठीक ही होगा. स्वभावगत बेफ़िक्री, मस्ती, खिलंदड़ापन और लोगों तथा चीज़ों पर पक्का विश्वास लेखन में भी तो झलकता होगा क्योंकि वह स्वभाव का हिस्सा बन चुका है कच्ची उमर का एक सपना अब तक साकार करने की कोशिश में लगा हुआ

असगर वज़ाहत

मधु अरोड़ा

हूं. यह सपना है दुनिया देखने का सपना. लगता है अभी कुछ नहीं देखा है. कभी-कभी मज़ाक में दोस्तों से कहता हूं कि मेरी एक छोटी-सी इच्छा है. वह यह कि संसार में जितनी भी जगहें हैं उन्हें देख लूं और जितने भी लोग हैं उनसे मिल लूं.

सपनों का टूटना — सबसे पहले सबसे बड़े सपने के टूटने के बारे में बताऊं. यह सपना था अपने समाज, लोगों और देश के बारे में, सोचा था सब कुछ अच्छा होगा. एक 'भयमुक्त' समाज और देश बनेगा. सोचा था ग़रीबी कम होगी, असमानता घटेगी, लोग स्वस्थ और शिक्षित होंगे. अपराध कम होगा, जीवन स्तर बेहतर होगा. लेकिन राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों और पूंजीपतियों ने मिल कर हमारी पीढ़ी के इस सपने को फिलहाल चकनाचूर कर दिया है.

एक और सपना था हिंदी भाषा और साहित्य को लेकर. वह यह था कि हिंदी क्षेत्र में — यानी पचास-साठ करोड़ लोगों की भाषा के क्षेत्र में भाषा, साहित्य और संस्कृति फूले-फलेगी. लेकिन आज स्थिति यह है कि हिंदी की क़िताबें कुछ हज़ार भी नहीं बिकतीं. हिंदी में अनूदित साहित्य — विश्व साहित्य और भारतीय साहित्य कितना है? शब्दकोश और विश्वकोश कितने हैं? समाज विज्ञान या विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी कहां है? आज तो हिंदी के समाचारपत्र भी अपने को हिंदी क्षेत्र की संवेदना से अलग कर रहे हैं. हिंदी समाचारपत्र अंग्रेज़ी की धुआंधार नकल में अजीब तरह से हास्य और करुणा के विषय बन गये हैं. हिंदी के नाम पर करोड़ों खरबों रुपया हर साल नष्ट हो जाता है यह भी एक स्वप्न का टूटना ही तो है.

मेरे ख्याल में सबसे दुःखद अपने को असहाय, मज़बूर और विवश पाना ही होता है. हिंदी क्षेत्र के संदर्भ में मैं यही महसूस करता हूं. यह वही क्षेत्र है जहां संसार के सबसे बड़े साम्राज्य की नींव हिला दी गयी थी. जहां एकता, देश-प्रदान और बलिदान की भावना अपने शिखर पर थी. जहां सामाजिक और सांस्कृतिक जागरूकता का डंका बजता था. वहां आज क्या है? भयानक और आक्रामक धर्मांधता. सांप्रदायिकता, जातिवाद, हिंसा और अपहरण, भ्रष्टाचार लोकतांत्रिक मूल्यों का विघटन, नागर समाज का घोर पतन. ये सब कैसे हुआ? क्यों हुआ? किसने किया? हम क्या कर रहे थे जब यह सब हो रहा था? अब क्या वास्तव में हम उसके सामने अपने को मज़बूर महसूस करते हैं? यह सपनों का टूटना है. यही स्थितियां और इनके विभिन्न स्वरूप मेरे लेखन में प्रतिध्वनित होते हैं.

माफ़ करें मैं इतना दार्शनिक, कलात्मक, पारदर्शी, गतिशील नहीं होना चाहता कि उसमें मेरा लेखन खो जाये या केवल बौद्धिक प्रलाप बन जाये.

❋ कैसी आगी लगाई? में आपने एक छात्र के ज़रिये राजनीति, छात्र आंदोलन, सपने आदि के जरिये सातवें दशक के कालखंड को सामने रखा है, इस कालखंड के आगे-पीछे की कड़ियों के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

'कैसी आगी लगाई' उपन्यास त्रयी का पहला भाग है. यह स्वप्न देखने, उसके टूटने और उसे जोड़ने की आकांक्षा की त्रयी होगी. पहला भाग एक पृष्ठभूमि है जिसमें जीवन अपने विविध रंगों के साथ, छात्र जीवन और सपनों के टूटने का ज़िक्र है. यह हिस्सा एक अर्थ में जीवन का प्रारंभ है. 'आग' प्रतीक है जो जीवन की पहली शर्त है. यह आग एक जीवन को जन्म देती है जो निरंतर आगे बढ़ता जाता है. हमारी पीढ़ी के सपने बनते हैं और टूटते हैं. सपने टूटने का जो सिलसिला 'कैसी आगी लगाई' के अंतिम हिस्सों से शुरू होता है वह दूसरे भाग में अपने चरम पर पहुंचता है.

तीसरा भाग उस टूटे सपने को पुनः स्थापित करने का काम करेगा और इस प्रक्रिया में पिछले और आनेवाले वर्षों को साकार करने का प्रयास किया जायेगा. यह त्रयी 'आज़ादी' से 'आज़ादी' तक की ही त्रयी कही जा सकती है. पहली आज़ादी हमें साम्राज्यवाद से मिली थी और दूसरी आज़ादी की लड़ाई अधिक जटिल है, जो बहुआयामी है, जो ज़्यादा लंबी चलने वाली है. यह 'आज़ादी' की लड़ाई अपनी जड़ता से भी है. सांप्रदायिकता से है. जातिवाद से है, क्षेत्रीयतावाद से है, अंधविश्वासों से है, हिंसा और अपराध से है तथा दूसरी ओर यह लड़ाई नव-साम्राज्यवाद से है. यह लड़ाई भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद से है. यह लड़ाई लोकतंत्र के उस रूप से भी है जो 'वोटों' के लिए हमें विभाजित करता और हमारा शोषण करता आया है.

इस तरह उपन्यास त्रयी अतीत और भविष्य को अपने अंदर समेटने का प्रयास करेगी.

❋ आप एक सिद्धहस्त लघु कथाकार, कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार हैं, इनमें से किस विधा में ज़्यादा सहज महसूस करते हैं?

देखिए मुख्य बात यह है कि विषयवस्तु लेखक को किस 'रूप' में संतुष्ट करती है. मुझे लगता है कुछ भी लिखते हुए सबसे पहले तो लेखक को ही यह लगना चाहिए कि उसे लेखन में मज़ा आ रहा है. मज़ा आने से मेरी मुराद यह है कि लेखक जो कहना चाहता है वह कह पा रहा है या नहीं? कुछ विषय ऐसे होते हैं जो लघु कहानी में जितने सटीक बैठते हैं उतना लंबी कहानी या उपन्यास में नहीं बैठ सकते. इसी तरह प्रत्येक विषय अपने लिए स्वयं 'फॉर्म' को चुन लेता है. कभी-कभी इसमें ग़लती भी हो सकती है. पर प्रायः होता यही है. 'फॉर्म' बदलने का दबाव बाहरी परिस्थितियां भी बनाती हैं. आपातकाल के दौरान मुझे लगा था कि पहले जैसे कहानियां लिखा करता था वैसी, उस तरह की, उस शैली में नहीं लिखी जा सकतीं; इसलिए शैली और फॉर्म में बदलाव आया था. प्रतीकात्मक कहानियां लिखी थीं, लघु-पंचतंत्र शैली की कहानियां लिखी थीं.

❋ चार कहानी संग्रह, तीन उपन्यास और छः नाटक लिख लेने पर आप जिस मुकाम पर हैं, वहां पहुंचने पर आप कैसा महसूस करते हैं?

ये तो बड़ा ख़तरनाक सवाल है जो बेचैन करता है. पहली बात तो यह कि मैंने बहुत नहीं लिखा है. उससे पहली बात यह कि मैंने कम पढ़ा और देखा-सुना, समझा और जाना है. इसलिए मैं अपने आपसे बिल्कुल संतुष्ट नहीं हूं और यह मानता नहीं कि मैं किसी 'मुकाम' पर खड़ा हूं. अपना लिखा प्रायः आधा, अधूरा और बचकाना-सा जान पड़ता है. इसलिए मैं असंतुष्ट हूं और चाहता हूं कि कुछ ऐसा करूं जिससे कुछ संतोष मिले. उपन्यास त्रयी को ही लेकर बहुत परेशान हूं. दूसरे भाग का पहला ड्राफ़्ट तैयार

लघुकथा

सपना

केदारनाथ 'सविता'

राजेश अपने पिता का अकेला पुत्र था. वह शरीर से बहुत मज़बूत और अखाड़े का पहलवान था. उसके शरीर को देखकर कोई उससे उलझना नहीं चाहता था. मगर उसके शरीर की तरह उसकी बुद्धि भी मोटी थी. वह यदि किसी की कलाई पकड़ लेता था तो दूसरा उसे छुड़ा नहीं पाता था. उसके पिता ने अपने जीवन-काल में उसकी शादी कर दी थी. बहू गोरी सुंदर व राजेश से अधिक पढ़ी-लिखी थी. वह घर के सभी कार्यों में निपुण थी. उसे समयानुसार दो पुत्र हुए. दोनों सुंदर थे. एक दिन उन्हें देखकर राजेश ने अपनी पत्नी से कहा 'इनमें से एक को मैं पहलवान बनाऊंगा और दूसरे को तुम जो चाहो तालीम दे सकती हो. मेरा सपना तो यही है.'

'नहीं, मैं दोनों को पढ़ा-लिखाकर बाबू-अफ़सर बनाऊंगी.' पत्नी ने बात काटते हुए कहा.

बात आयी-गयी हो गयी.

राजेश एक दिन सपरिवार ट्रेन से किसी रिश्तेदारी में जा रहा था. रास्ते में ट्रेन का एक्सीडेंट हो गया. उसमें राजेश व उसकी पत्नी दोनों चल बसे. उनके दोनों बच्चे अनाथ हो गये.

आज दोनों रेल्वे स्टेशन के बाहर भीख़ मांग कर गुज़ारा करते हैं.

पुलिस चौकी रोड, लालडिग्गी,
सिंहगढ़ गली (चिकाने टोला),
मीरजापुर- २३१००१ (उ. प्र.).
मो. ९९३५६८५०६८

किया है पर उसमें भी अनेक झोल, कमियां और ख़ामियां हैं. देखिए, क्या होता है. कभी-कभी तो लगता है कि लेखन कर्म ही अपने आप में ही बेचैन, असंतुष्ट और कभी समाप्त न होने वाले प्रश्नों का सिलसिला है.

❋ आपके लेखन की सबसे बड़ी ख़ासियत आपकी भाषा की सादगी और क़िस्सागोई में महारत है, इसे आप कैसे साधते हैं?

सादगी और क़िस्सागोई मुझे पसंद है क्योंकि उसके संस्कार मुझे मिलते रहे हैं और मेरे जैसे अनपढ़ और अंतर्मुखी व्यक्ति के स्वभाव से मेल खाते हैं. मैं आपसे कोई बौद्धिक विमर्श नहीं कर सकता केवल क़िस्सा सुना सकता हूं तो क्या करूंगा? क़िस्सा ही सुनाऊंगा? मेरे अंदर झूठ बोलने, सहने और संजो कर रखने की बहुत ताकत नहीं है. हां, थोड़ा बहुत — दिल रखने के लिए तो चलता है. लेकिन उससे ज़्यादा झूठ काफ़ी मुश्किल हो जाता है. इसलिए चाहता हूं कि कम से कम लेखन में सच का मज़ा ले लूं और दूसरों को दे दूं, बस यही बात है.

❋ आप ख़ूब यात्राएं करते हैं. क्या लेखन में उन यात्राओं की कोई भूमिका होती है?

यात्राएं तो मैं कल्पना में भी करता हूं. हर समय किसी भी यात्रा के लिए तैयार रहता हूं. प्यारे अजीज़ दोस्त और उर्दू के बहुत बड़े कवि शहरयार का शेर है —

हर बार यही घर को पलटते हुए सोचा,
ऐ काश किसी लंबे सफ़र को गये होते.

मैं जब बच्चा था तो मेरी दुनिया बड़ी सीमित थी. हम बच्चों पर सख़्ती यह थी कि घर (जो हक़ीक़त में घर था और वैसे घर अब नहीं होते) बाहर अकेले न जायें. बड़े होने पर भी सूरज डूबने से पहले घर लौटना अनिवार्य था. मैं कुछ–कुछ जानने लगा था कि दुनिया बहुत बड़ी है.

हालांकि मेरा सामान्य ज्ञान बहुत सीमित था और है भी लेकिन इसके बावजूद लगता था कुछ हज़ार किलोमीटर दूर नया होगा, रोचक होगा, ट्रेनों या ट्रकों को आते–जाते देखता था तो मन में अजीब तरह का रोमांच भर जाता था कि अच्छा बंगाल कैसा होगा? कलकत्ता शहर कैसा होगा? कैसे लोग होंगे? कैसे बाज़ार होंगे? कैसी ज़िंदगी होगी?

जब अलीगढ़ विश्वविद्यालय आया तो अपने कोर्स की क़िताबों से ज़्यादा मैं विदेशों पर छपी क़िताबें के पन्ने पलट कर तस्वीरें देखा करता था. अंगूर के बागों में अपनी पारंपरिक वेशभूषा में काम करती सुंदर लड़कियां और पृष्ठभूमि में घास के हरे पहाड़ जैसे मेरे ऊपर जादू कर देते थे और मैं सोचता था सब कुछ छोड़-छाड़ कर चल दूं पर उस समय तक पासपोर्ट वीज़ा वग़ैरे की जानकारी मिल चुकी थी. लेकिन वे क़िताबें तो देखता ही रहता था. यही सपना पाला था कि पूरे संसार का भ्रमण करूंगा. यह सपना पूरा नहीं हो सका.

दरअसल, घूमते समय मेरे ध्यान में यह नहीं रहता कि यह अनुभव कहानी उपन्यास में किस तरह शामिल होंगे. लेकिन समय आने पर उनका कहीं न कहीं उपयोग हो जाता है. बीस–पच्चीस साल पहले देखी जगहें, बातें, लोग अचानक कहानी का विषय बन जाते हैं. यात्राएं कई अर्थों में ताज़ा कर देती हैं. यह ताज़गी लेखन के लिए ही नहीं जीने के लिए भी ज़रूरी होती हैं.

❋ एक ऐसे दौर में जब पाठन और पाठक कम से कम हिंदी समाज में बिल्कुल हाशिये पर चला गया है तो लेखन के भविष्य को लेकर आपको क्या लगता है?

फिर बात आ गयी हिंदी समाज की. इससे पहले मैं इस पर आंसू बहा चुका हूं. यहां यह स्पष्ट कर दूं कि मैं हिंदी समाज के महत्व और उसकी ऐतिहासिक भूमिका को मानता और उसका सम्मान करता हूं तथा 'बीमारू' प्रदेशों वाली धारणा को अस्वीकार करता हूं. बहुत सालों से यह सोच रहा था कि हिंदी प्रदेशों में वैसी सांस्कृतिक जागरूकता क्यों नहीं है जैसे बंगाल, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु आदि में है? भाषा को ही ले लें. पढ़ा-लिखा बंगाली बांग्ला साहित्य और संगीत में रुचि लेता है. नाटक देखता है. पर हिंदी क्षेत्र का पढ़ा-लिखा आदमी हिंदी भाषा साहित्य और संस्कृति से विमुख हो जाता है. आप उसके घर में हिंदी की एक क़िताब भी न पायेंगे. ऐसा क्यों होता है? इस मसले पर सोचते–सोचते एक कारण समझ में आया. आपसे 'शेयर' कर सकता हूं. मेरे ख़्याल से हिंदी प्रदेशों में सांस्कृतिक उदासीनता का कारण या बीज १८५७ की असफल क्रांति में छिपे हुए हैं. आप जानती ही हैं कि १८५७ में हिंदी क्षेत्र की बड़ी प्रमुख भूमिका थी. आप यह भी जानती हैं कि अंग्रेज़ों के राज को समाप्त कर देने की योजना बहुत लंबे समय से बनायी जा रही थी. इसमें कोई संदेह नहीं कि इस लड़ाई में राजा, नवाब, मौलवी, पंडित, किसान, दस्तकार

(शेष पृष्ठ-५४ पर देखें....)

अंधेरे से जूझती ज्योति : ज्योतिर्मौयी देवी

✍ डॉ. राजम पिल्लै

''असली सवाल यह है कि आख़िरकार एक स्त्री को बाघिन, मोहिनी या भक्ष्य-खाद्य का दर्ज़ा क्यों दिया जाता है और क्यों हमारे साधु-संत यह कहते हैं कि कामिनी-कंचन से बचकर रहना चाहिए! क्या उन लोगों की अपनी माताएं और बहनें नहीं थीं? हमारी भावनाओं और विचारों का इतिहास केवल स्त्री की कमज़ोरी की वजह से कमज़ोर नहीं रहा है. हमारे समाज में तो स्त्री को एक 'व्यक्ति' के तौर पर कोई अधिकार ही नहीं प्राप्त है वरन उसे तो अवहेलना की दृष्टि से देखा जाता है और उसे विरोध करने का, प्रतिवाद करने का कोई अवसर भी नहीं मिलता.''

यह २०-२१वीं सदी के किसी 'स्त्रीवादी' पुरुष-महिला के आक्रोश का सा स्वर लगता है ना? लगता है ना कि किसी मानवतावादी-समतावादी महापुरुष ने स्त्री की दुरावस्था के प्राचीन, सनातन और अधुनातन त्रासद इतिहास को जानकर-जांचकर यह टिप्पणी की है? किसका है यह स्वर? किसकी है वह लेखनी जिसने आंसू ख़ून से भीगे हुए सत्री के दारुण जीवन को केवल कुछ पंक्तियों में उजागर कर रख दिया है?

यह कितने सुखद आश्चर्य की बात है कि ये पंक्तियां-बीसवीं सदी के शुरुआती दौर की एक तेजस्वी बंगाली स्त्री ज्योतिर्मौयी देवी ने लिखी हैं और ज्योतिर्मौयी की जीवन-रेखा का अनुसरण करते हुए तो यह आश्चर्य और भी बढ़ जाता है.

सीधी-टेढ़ी जीवन-रेखा :

ज्योतिर्मौयी का जन्म २३ जनवरी १८९४ को जयपुर, राजस्थान में हुआ और मृत्यु सन १९८८ को कोलकता, बंगला में हुई. उनके दादा संसारचंद्र सेन सन १८५७ में जयपुर, राजस्थान आये थे और शुरुआत में स्कूल-टीचर होने के बावजूद अपनी कर्मठता, विद्वत्ता और कर्तव्य-निष्ठा के कारण बहुत जल्द ही जयपुर के महाराज के दीवान पद पर नियुक्त हो गये. ज्योतिर्मौयी को बचपन से ज़्यादा पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला/नहीं दिया गया लेकिन उनमें वह प्रतिभा, वह मानव-मूल्यांकन की तीव्र दृष्टि थी कि राजस्थान के राजघरानों के रीति-रिवाज, सामान्य आदमी के रहन-सहन, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति आदि की तस्वीरें उनके दिल-दिमाग़ में अंकित होती गयीं और छोटी उम्र में ही जैसे वे शब्द-चित्रों की एक चित्र-दीर्घा ही अपने मन में रचती चली गयीं.

ज्योतिर्मौयी शिक्षित, संपन्न, सम्माननीय परिवार में पैदा हुई और उनका विवाह भी ऐसे ही एक परिवार में, एक सुशिक्षित, संस्कारी पुरुष के साथ हुआ.

पर, भाग्य की त्रासद विडंबना को कोई कैसे पहले ही से देख सकता था. 'बालविवाह', 'बालिका वधू' और 'बाल-विधवा' की भयावह परिस्थितियों और परिणतियों की ओर अभी-अभी समाज के जागरूक अग्रगण्य नेताओं-सुधारकों का ध्यान जाने लगा था. हालांकि, जिसे भारत का 'रिनेंसा' या नवजागरण काल माना जाता है उसे शुरू हुए काफ़ी दशक बीत चुके थे लेकिन ज़मीनी स्तर पर उसका प्रभाव लगभग कुछ ही दायरों पर पड़ा था. हिंदी की सिद्धहस्त

रचनाकार महादेवी वर्मा का विवाह भी दस वर्ष की उम्र से काफ़ी पहले कर दिया गया था. यह और बात है कि महादेवी ने लगभग जान की बाजी-सी लगाकर उस परिस्थिति से अपने को मुक्त किया था.

वज्रपात! सौभाग्य सूर्य का असमय अस्त:

ज्योतिर्मौयी का विवाह दस वर्ष की उम्र में एक सफल, सुसंस्कृत वकील किरणचंद्र सेन के साथ हुआ. उनकी छ: संतानें हुईं और गृहस्थ जीवन भी सुख-शांति के साथ व्यतीत हो रहा था लेकिन सन १९१८ में जब ज्योतिर्मौयी मुश्किल से २५ ही साल की थीं उनके पति की इन्फ्लुएंज़ा से मृत्यु हो गयी और ज्योतिर्मौयी बच्चों के साथ अपने मायके आ गयीं.

डॉ. राजम पिल्लै

पिता के घर से उसे भरपूर सहानुभूति मिली. उसके दुर्भाग्य पर २५ साल की उम्र में ही पति विहीन वर्तमान और अज्ञात भविष्य की दुश्चिंताओं से परिवार भी विचलित हो ही गया था. पर क्या करते वे भी, समाज में सैकड़ों स्त्रियां ऐसी परिस्थितियों में जी रही थीं, जूझ रही थीं, मर रही थीं.

एक ज्योति-शिखा जल उठी :

विधवा का पारंपरिक, धर्मोनुमोदित जीवन बिताते हुए बच्चों के लालन-पालन के बीच ज्योतिर्मौयी ने धीरे-धीरे क़िताबें पढ़नी शुरू कीं, घर में दादाजी का समृद्ध पुस्तकालय तो पहले ही से था. बांग्ला की प्राथमिक क़िताबें, फिर अंग्रेज़ी की भाषाओं से परिचय होता गया. पश्चिमी देशों में स्त्री की दुरावस्था पर लिखी जा रही, विचारकों की क़िताबों की, उनके आंदोलनों की थोड़ी-थोड़ी जानकारी होती गयी. फिर राजस्थान-दिल्ली के वातावरण से बाहर, कलकत्ता, बंगाल के वातावरण में रहने का अवसर मिला. कलकत्ता का वैचारिक संसार उनके अपने सगे-संबंधी कॉलेज़-युनिवर्सिटी के छात्रों का खुला प्रगतिशील सोच का वायुमंडल तो कुछ और ही था फिर तो...

यों लगा जैसे मन की अंधेरी गहराइयों में एक दीपक अचानक जल उठा, यों लगा जैसे खिली हुई हंसी हो. हमारे दिल-दिमाग़ में जो दीपक होता है ना, उसमें पर्याप्त तेल होता है और पास ही में माचिस भी होती है. उसमें दियासलाइयां भी होती हैं. लेकिन कई बार माचिस भीगी हुई होती है.

और फिर ज्योतिर्मौयी ने भावों को शब्द और शब्दों को अक्षर बनाना शुरू किया. कुछ पंक्तियों, बेतरतीब, उखड़े-उलझे. कुछ कविताएं भी. किसी को दिखाया नहीं, संकोच के मारे डर के मारे. एक गद्यखंड लिखा शिकायतें ही शिकायतें औरत पर लगी पाबंदियों पर, सामाजिक वर्जनाओं पर. गद्य खंड का शीर्षक था — 'नारी-कथा'.

साहित्य-जगत में प्रवेश और तहलका :

ज्योतिर्मौयी के परिवार के एक मित्र ने वह गद्यखंड पढ़ा और 'भारत-वर्ष' नामक बांग्ला पत्रिका के 'महिला-पृष्ठों' पर छापने के लिए भेज दिया. उस 'नारी-कथा' में जो तथ्य, जो आक्रोश, जो आक्रंदन था उसने जैसे साहित्य जगत में तहलका मचा दिया. इतनी छोटी उम्र में एक स्त्री यह कहना चाहे कि आंख को केवल मानव-प्राणी नहीं, एक 'व्यक्ति' बनने का मौक़ा दो, दर्ज़ा दो, हक़ दो!!

ज्योतिर्मौयी को फिर तो एक ऐसी रचनाकार के रूप में मान्यता और लोकप्रियता मिलती गयी कि वह स्त्री के अधिकारों के लिए विशेषकर संपत्ति और उत्तराधिकार के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाती हैं और अपने लेखों और वक्तव्यों के माध्यम से बड़ी निर्भीकता से उनके लिए जूझती हैं.

सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों में हिस्सेदारी

ज्योतिर्मौयी सच्चे अर्थों में 'एक्टिविस्ट' थीं. गांधीजी के सिद्धांतों की वे प्रशंसक थीं, कुछ हद तक अनुयायी भी लेकिन उन्होंने कभी भी अपने विवेक को भावना का दास नहीं बनने दिया. वे ग़रीबों, पिछड़े वर्गों, वेश्याओं के मुहल्लों में जाती थीं, उनके बीच रहने और उनकी मदद करने के लिए. ओढ़े हुए त्याग और शाब्दिक सहानुभूतियों से उन्हें नफ़रत थी. वे सिद्धांतों की अनुयायी थीं, व्यक्ति की नहीं!

एक ज्योतिर्मय विरासत :

सनातन संस्कारों में जन्मी-बढ़ी, एक मध्यवर्गीय स्त्री, अपने समाज द्वारा पूर्वनिश्चित आरोपित संस्कारों-नियमों-आदेशों का परिपालन करती है और अपनी पूर्वजों स्त्रियों की तरह विवाह के रेशमी जोड़े में गृह की बाहरी देहली को लांघकर एक बार जो अंदर गयी तो फिर अंतिम बार सूती कफ़न पहनकर ही बाहर निकलने की वैचारिक सीमाओं के बीच जीवन-यापन करती है सो बीसवीं सदी के प्रारंभिक दौर में जन्मी ज्योतिर्मौयी का जीवन भी शायद उसी तरह व्यतीत हो गया होता लेकिन २५ वर्ष की उम्र में विधवा और छ: बच्चों की मां बन जाने की दुर्दांत नियति ने उसके जीवन की राह को, मंजिल को बदल दिया.

(शेष पृष्ठ ५४ पर...)

हार्ड होती ज़िंदगी में कुछ सॉफ़्ट ढूंढ़ने की कोशिश

✍ डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी

'सॉफ़्ट कॉर्नर' (कहानी संकलन) : **श्री राम नगीना मौर्य**
प्रकाशन : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ - २२६०२३.
मूल्य : १७५ रुपये

'मेरी नज़र में साहित्य वही है जो सर्वसमावेशी नज़रिए से आम जन की भाषा में उनसे सरल-सहज संवाद स्थापित कर सके. रचना की सार्थकता भी यही है कि वह मानवीय संवेदना, सामाजिक सरोकारों से जुड़ी लगे.' इन्हीं शब्दों में अपने नवीनतम कहानी-संग्रह की भूमिका गढ़ रहे हैं राम नगीना मौर्य जी. आपके पाठक इन शब्दों की परख करेंगे, आपके पिछले दो संग्रहों में संकलित कहानियों का आधार मानकर और उन्हें इत्मीनान हो जायेगा कि आपके इन शब्दों और सोच में कोई अंतर नहीं है. 'आख़िरी गेंद' और 'आप कैमरे की निग़ाह में बंद हैं' के बाद २०१९ में हाथ आया आपका नवीनतम संग्रह 'सॉफ़्ट कॉर्नर', ग्यारह कहानियों को बटोरकर. मौर्य जी की कहानियों में क़ैद जीवन आम है पर पाठक तक पहुंचते-पहुंचते उसके पल ख़ास हो जाते हैं, उसमें जुड़ी भावनाएं मन को गुदगुदाती हैं, उसकी धारा स्मृति में अपना घरौंदा बना लेती हैं.

उक्त संग्रह में गृहस्थ जीवन के खट्टे-मीठे क़िस्से, ऑफ़िस का सामान्य-सा माहौल, दोस्तों के साथ गप-शप का मज़ा, बाज़ार का दृश्य, अस्पताल की दौड़-धूप, स्मृतियों के झरोखे हैं और इन्हीं में से उभरकर आये हैं वर्तमान भारत के सरोकार. गढ़ रहे हैं कहानीकार घर संभालती गृहिणी का अनगढ़ व्यक्तित्व, समाज का हिस्सा बनने की ललक से भरे एक आम व्यक्ति की चिंता, बाज़ार-दुकानों की भाषा और हड़बड़ाहट, रिश्तों में जीने का अभ्यस्त आम भारतीय का चरित्र. याद आती है केदारनाथ सिंह की 'रोटी' कविता की पंक्तियां — 'आप विश्वास करें/ मैं कविता नहीं कर रहा/ सिर्फ़ आग की ओर इशारा कर रहा हूं/ वह पक रही है/ और आप देखेंगे — यह भूख के बारे में/आग का बयान है/ जो दीवारों पर लिखा जा रहा है (केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन)

'सॉफ़्ट कॉर्नर' शीर्षक कहानी उक्त संकलन की अंतिम कहानी है जिसमें पति-पत्नी के बीच के मधुर वार्तालाप में उनके अतीत के पन्नों को पलटते हुए स्मृतियों को ताज़ा किया जा रहा है. कौन-सी स्मृतियां? विवाह पूर्व पत्नी के लिए आये रिश्तों में लड़कों का ज़िक्र और जब उसका पति उसे पहली बार देखने आया था तब उसके दिल में कैसे अरमान, कैसे सपनों ने जगह बनायी थी. पत्नी भी पति से पूछती है उस लड़की के विषय में जो उसे स्कूल के दिनों में बेहद पसंद थी पर आगे चलकर केवल यादों में ही उसका दख़ल रह गया. कहानी बड़ी रोचक यों बन पड़ी है कि इन अतीत की घटनाओं का दोनों पति-पत्नी बड़ी सकारात्मकता व ज़िंदादिली से लुफ़्त उठा रहे हैं. कहीं-कहीं पर कुंवारी लड़कियों की अल्हड़ भावनाओं की भी झलक मिलती है. शादी के रिश्ते आने पर घर-परिवार में होने वाली चहल-पहल का भी सजीव वर्णन है. और कोई भी दंपति इस बात को नकार नहीं सकती कि उन्होंने कभी न कभी अपने एकांत में ऐसे मुद्दों को अपने बीच न छेड़ा हो. यह अतीत विवाह के वर्षों बाद भी हमें कहीं आनंदानुभूति से सराबोर कर देता है.

'लोहे की जालियां' कहानी आम भारतीय की सोच को ज़ाहिर करती है जहां लेखक अब भी यह विश्वास करते हैं कि हमारे मन में मानवीय मूल्य अपनी मज़बूत जड़ें जमाये हुए हैं. कहानी में सत्यजीत अपने पुराने किराए के मकान से लोहे की जालियां निकलवाने या उसके पैसे नये क़िरायेदार से वसूल करने का भरसक प्रयास करता है क्योंकि वे जालियां उसने पांच हज़ार रुपये ख़र्च कर लगवायी थीं जब वह उस मकान में किराये पर रहता था. पर जब कई मंसूबे बनाने पर वह पहली बार उस मकान के नये किरायेदार से मिला तो उसके सारे इरादे बदल गये. वह नया किरायेदार

उसी की यूनिवर्सिटी का ज़ूनियर सुशांत था जिसके साथ उसकी पक्की यारी थी. छात्रावस्था में बेकारी के दिनों में दोनों ने एक-दूसरे की कई बार मदद की थी. वे सारी स्मृतियां बातों ही बातों में उनके अतीत के पर्दे से सरककर वर्तमान में झांकने लगीं. भावनाओं ने सत्यजीत की दुनियादारी को पछाड़ दिया और वह जालियों के पैसे मांगे बिना ही ख़ुशी-ख़ुशी घर लौट आया. उसे ख़ुशी थी कि अपने पुराने साथी के वह आज भी काम आ गया क्योंकि वे जालियां उस घर को खिड़कियां खोलकर हवादार और रोशनी बख़्शने और मच्छरों से बचाने में कारगर साबित हो रहीं हैं. बहुत आम घटना को लेखक ने कथ्य के रूप में चुना, पर जिस मानवीय मूल्य को वे उभारना चाहते हैं वह समाज में जब तक जीवित रहेगा तब तक यह समाज बेख़ौफ सांसें ले पायेगा. लिखा है आपने कि ये लोहे की जालियां इंसानी रिश्तों के आगे कमज़ोर पड़ गयीं. आम जीवन में भी हम कई बार ऐसे क़दम उठा लेते हैं जो हमारी अंतरात्मा की पुकार से प्रेरित होते हैं. लेखक 'संकल्प' कहानी में ऐसे ही एक आम ऑफ़िस कर्मी को चित्रित करते हैं जो लंच ब्रेक में बाज़ार की तरफ़ निकलकर कई दुकानें घूमकर भी अपनी ज़ेब में रखे नोट को ख़र्च करने से बच जाता है. आय और व्यय की खींचतान में जीने वाले आम भारतीय के मन के कश्मकश को कहानी में पूरी सजगता से उकेरा गया है. पर यही व्यक्ति एक ग़रीब भूखे जूते पॉलिश करने वाले को बीस रुपए देकर पॉलिश करवाता है ताकि उसके पेट की आग बुझ सके. वह अनपढ़ लड़का पूरी तन्मयता से उसके जूते चमका देता है और वह ज़िद से बचाये हुए अपने बीस रुपये उसे देकर कहीं आत्मतुष्टि के भाव से भर जाता है.

'छुट्टी का सदुपयोग' दफ़्तर न जाकर छुट्टी लेने वाले उस व्यक्ति के एक दिन की दिनचर्या है जब उसे यह महसूस होता है परिवार की ऐसी कई ज़िम्मेदारियां होती हैं जिन्हें पत्नी बख़ूबी निभाती है. कूड़े वाला, महरिन, फिर कम से कम तीन-चार सेल्समैन, कुरियर वाले, केबिल वाले, गैस बुकिंग के डिलीवरी मैन, मीटर रीडिंग देखने वाले लगातार घर पर आते ही रहते हैं. ऐसे में पत्नी को भी फ़ुरसत कहां मिलती है इसी प्रकार के भाव 'उसकी तैयारियां' कहानी में मिलते हैं जहां एक पत्नी अपनी दैनिक ज़िम्मेदारियों के बारे में बतियाती हुई अपनी परेशानी व खीझ को ज़ाहिर करती है. बच्चों और पति की देखभाल करने में तन्मय गृहिणी को किसी मशीन से कम नहीं खटना पड़ता. उस पर उसे कोई छुट्टी भी नसीब नहीं होती. ऐसे में लेखक ने धैर्यपूर्वक ऐसी गृहिणियों की तकलीफ़ को शब्दों का जामा पहनाया है. सच ही तो है तन्ख़्वाह न मिलने पर भी गृहिणियां घर का बेहिसाब काम निबटाती हैं पर उनकी कीमत को कितने परिवार समझ पाते हैं.

कहानीकार ने बाल मनोविज्ञान को दर्शाते हुए 'अनूठा प्रयोग' व 'बेवकूफ लड़का' जैसी दो कहानियां रची हैं जिनमें बच्चों को समझने में बड़ों की लापरवाही पर भी व्यंग्य किया गया है. बड़ों की चर्चाएं व वार्तालाप बच्चों को कितनी उबाऊ लगते हैं पर ऐसे जमघटों में भी उन्हें बेमन से शामिल होना पड़ता है. ऐसे में थोड़ी–सी भूल-चूक पर हम सबके सामने ही बड़ी निर्दयता से उन्हें डांटने लगते हैं. ऐसे में लेखक कहते हैं — 'उस पिता का अपने पुत्र पर इस तरह बार-बार बिफर जाना मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लग रहा था. जैसी कि मेरी जानकारी है, आबालवृद्ध... हम सब जन के अपने-अपने मनोविज्ञान हैं. यदि बचपन में बच्चों को ज़्यादा डराया-धमकाया जाये, तो आगे चलकर उनमें मनोविकार आने से इंकार नहीं किया जा सकता. ...सार्वजनिक रूप से उन्हें कतई डांटना-मारना या व्यंग्य-तंज नहीं करना चाहिए.'

'अख़बार का रविवारीय पृष्ठ' अपनी तरह की एक प्यारी–सी कहानी है जिसमें अख़बार पढ़ने की ललक रखने वाले व्यक्ति की किसी विशिष्ट प्रति को पाने के संघर्ष को बड़े मन से चित्रित किया गया है. संघर्ष इसलिए कहा गया क्योंकि पाठक कहानी से गुज़रने पर यह महसूस करता है कि एक रविवारीय पृष्ठ को पाने के लिए उस व्यक्ति ने कितनी ज़द्दोजहद की, पर सफल न हो पाया पर पड़ोस के घर से भिजवाए गये पनीर के पकौड़ों को खाते समय उसने देखा कि वे पकौड़े उसी पृष्ठ में लपेटकर भेजे गये थे, तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा. लेखक उक्त कहानी में मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए उस ज़िद, उहापोह, सनक व मानसिक अस्थिरता को दिखाते हैं जिनसे व्यक्ति तब गुज़रता है जब उसे किसी वस्तु को ढूंढ़ने के लिए संघर्ष करना पड़ता है. 'बेकार कुछ भी नहीं होता' में ऑफ़िस के माहौल में उपजी उन उलझनों को दिखाया गया है जिनसे अक्सर व्यक्ति को गुज़रना पड़ता है.

सार संक्षेप यह है कि मौर्य जी का लेखन बाज़ारवाद, नगरीकरण, आधुनिक सामाजिक मूल्यों का जीवंत दस्तावेज़

है. ऐसी व्यवस्था में हम घिर चुके हैं जहां अनिश्चतता व व्यस्तता ने हमारे सुकून के पलों को तितर-बितर कर दिया है. ऐसे में कहानीकार उन क्षणों को बटोरने का सार्थक प्रयास करते हैं जो अब भी हमें मकड़जाल में तब्दील होने वाली ज़िंदगी में सांस लेने के क़ाबिल बनाये.

कहानियों की पृष्ठभूमि आम होने पर भी कहानीकार की मंशाएं साधारण नहीं हैं और पाठक कहानियों से गुज़रने के बाद भागमभाग की इस दुनिया में कुछ राहत महसूस अवश्य करता है. लेखक के शब्दों में यदि कहें — 'यह ठीक है कि जीवन में कठिनाइयां हैं, पर यही तो हमें लड़ने की ताकत, ख़ुद को समझने का अवसर भी देती हैं. हम जब-जब मुश्किल परिस्थितियों से उभरते हैं, हमारा उत्साहवर्धन तो होता ही है, आत्मविश्वास भी कई गुना बढ़ जाता है. याद्दाश्त पर ज़ोर दें तो पायेंगे कि हम सबके यदि अपने-अपने अतुलनीय जीवनानुभव हैं, तो उनसे जुड़ी असंख्य रोमांचकारी कहानियां भी हैं, बशर्ते हम अपने आस-पास के प्रति पारखी, कोलंबसी नज़रें रखते सतर्क हों.'

२-ए, उत्तरपल्ली, सोदपुर,
कोलकाता-७००११०,
मो.-९४३३६७५६७१

मानवीय संघर्ष की जिजीविषा से रूबरू कराता, दिलचस्प और प्रेरणादायी उपन्यास

दिपक गिरकर

(उपन्यास) – डॉ. हंसा दीप

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर - ४६६००१ (म. प्र.)
मूल्य : ३०० रूपए

उपन्यासकार डॉ. हंसा दीप का हिंदी कथा साहित्य में चर्चित नाम है. कहानी और कथा लेखन में हंसा जी की सक्रियता और प्रभाव व्यापक हैं. डॉ. हंसा दीप की कई कहानियां प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं. 'कुबेर' डॉ. हंसा दीप का दूसरा उपन्यास है, इन दिनों काफ़ी चर्चा में है. पिछले साल इनका 'बंद मुट्ठी' उपन्यास भी काफ़ी चर्चित रहा था. लेखिका का एक कहानी संग्रह 'चश्मे अपने-अपने' प्रकाशित हो चुका है. लेखिका वर्तमान में टोरंटो यूनिवर्सिटी में लेक्चरार के पद पर कार्यरत हैं. लेखिका ने उपन्यास 'कुबेर' में बालक धन्नू के जीवन-संघर्ष, उसकी सफलताओं, विफलताओं और उसके जीवन के उतार-चढ़ाव को जिस कौशल से पिरोया है, वह अद्भुत है. 'कुबेर' उपन्यास का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है. इस उपन्यास के पात्र जीवंत हैं. यदि आप एक बार इस उपन्यास को पढ़ना शुरू कर देते हो तो आप इसे बीच में छोड़कर उठ नहीं सकते हैं, आपको इस उपन्यास के पात्र अपनी दुनिया में खींच लेते हैं. इस उपन्यास में गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ हैं. पुस्तक की भाषा सरल व सहज है. हंसा जी की लेखनी में परिपक्वता है और इनकी रचनाधर्मिता हमेशा सोद्देश्य रही है. इस उपन्यास का उद्देश्य है ग़रीब असहायों की सेवा करने जैसी भावनाओं को जगाना. इस कथा के पात्र जब एक दूसरे से बिछुड़ते हैं तो उस बिछुड़ने के दर्द को हंसा जी ने बहुत ही ख़ूबसूरत शब्दों में व्यक्त किया है. नायक धन्नू के जीवन पर केंद्रित इस उपन्यास का कथानक सकारात्मक और प्रेरणादायी है. कथाकार ने इस उपन्यास की कथा में मानवीय रिश्तों के भावनात्मक पहलुओं के साथ व्यावसायिक पक्षों को भी प्रभावी तरीक़े से अभिव्यक्त किया है. लेखिका इस उपन्यास में लिखती है 'कुबेर का खजाना नहीं है मेरे पास जो हर वक़्त पैसे मांगते रहते हो.

मां की इस डांट से बालक धन्नू समझ नहीं पाया कि दस-बीस रुपयों में खजाना कैसे आ जाता है बीच में, यह खजाना कहां है और इसमें पैसे ही पैसे हैं, कभी ख़त्म न होने वाले. अगर यह सच है तो – मां के लिए एक दिन यह खजाना हासिल करके रहूंगा मैं.' एक छोटे से गांव के ग़रीब परिवार का धन्नू किस प्रकार अपनी मेहनत, लगन, कर्मठता, तन्मयता, क़ाबिलियत और दृढ़ इच्छाशक्ति से अपने गांव से न्यूयॉर्क पहुंचता है और कुबेर बनता है और साथ ही उसके द्वारा गोद लिये ग्यारह बच्चे भी कुबेर बनते हैं, यह तो आप नायाब और बेमिसाल उपन्यास 'कुबेर' पढ़कर ही समझ पायेंगे. उपन्यास पढ़ते हुए कहीं-कहीं आंख़ें भीग जाती हैं. 'जीवन-ज्योत' संस्था में रहने वाले और वहां के मुख्य कार्यकर्ताओं के रहन-सहन, खान-पान, वार्तालाप-संभाषण आदि को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे लेखिका जीवन-ज्योत में उनके साथ रही हो.

कथाकार हंसा जी ने इस उपन्यास को नोबेल पुरस्कार विजेता माननीय कैलाश सत्यार्थी जी को समर्पित किया है.

देश में ग़रीबी, बालश्रम और सामाजिक, प्राकृतिक त्रासदी से दिन-रात भिड़ने वाले असली नायकों को जानने की चाह रखने वालों के लिए 'कुबेर' एक बेहद पठनीय उपन्यास है. इस उपन्यास की भूमिका बहुत ही सारगर्भित रूप से वरिष्ठ साहित्यकार श्री पंकज सुबीर ने लिखी है. श्री पंकज सुबीर ने भूमिका में लिखा है 'असल में हंसा जी के उपन्यासों की कथावस्तु जीवन से ली गयी होती है. आम आदमी के जीवन से. उसके संघर्ष, उसकी सफलताएं, विफलताएं, ख़ुशी, ग़म ये सब हंसा जी के कथा विस्तार में शामिल रहता है. उनकी शैली तथा शिल्प इतना रोचक तथा संप्रेषणीय होता है कि उपन्यास पढ़ते समय आगे के घटनाक्रम की जिज्ञासा बनी रहती है.' लेखिका जीवन की समस्याओं को बख़ूबी उठाती है और संघर्ष के लिए प्रेरित करती है. इस पुस्तक को पढ़ते हुए इस उपन्यास के पात्रों के अंदर की छटपटाहट, उनके अन्तर्मन की अकुलाहट को पाठक स्वयं अपने अंदर महसूस करने लगता है. वैश्विक परिवेश में झिलमिलाते मानवीय मूल्य पाठकों को ताज़गी से भर देते हैं. पूरा उपन्यास एक सधी हुई भाषा में लिखा गया है. उपन्यास के कथानक में कहीं बिखराव नहीं है. बुनावट में कहीं भी ढीलापन नहीं है. उपन्यास की बुनावट और कथा का प्रवाह पाठक को बांधे रखता है, प्रस्तुत उपन्यास का कथानक गतिशील है जिससे पाठक में जिज्ञासा बनी रहती है. इसका कथानक इसे दूसरे उपन्यासों से अलग श्रेणी में खड़ा करता है. 'कुबेर' बहुपात्रीय उपन्यास है. पात्रों की अधिक संख्या से ऊब नहीं पैदा होती है, अपितु उनके संवाद से स्वाभाविकता का निर्माण होता है. प्रत्येक पात्र अपने-अपने चरित्र का निर्माण स्वयं करता है. अन्य पात्रों के साथ प्रत्येक घटना धन्नू उर्फ़ डीपी के आसपास घूमती है. उपन्यास रोचक है और अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बांधे रखने में सक्षम है. अंत बहुत प्रभावशाली है.

'कुबेर' उपन्यास का शीर्षक अत्यंत सार्थक है. उपन्यास का कथानक इस प्रकार है. एक नेताजी धन्नू का उत्साह देखकर उसे गांव के सरकारी स्कूल से निकालकर गांव से दूर एक अंग्रेज़ी स्कूल में दाख़िला करवा देते हैं. दो वर्ष तक सब कुछ ठीक चलता है क्योंकि नेताजी ही उसके स्कूल की फ़ीस, पुस्तकें और कांपियों का इंतज़ाम करते है लेकिन जब दो साल बाद नेताजी सत्ता में नहीं रहते हैं तब धन्नू पर आफ़त आ पड़ती है. उसके माता-पिता बहुत ग़रीब हैं जो उसके स्कूल की फ़ीस, पुस्तकें और कॉपियों की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं. स्कूल में धन्नू को रोज़ मार पड़ती है और अपमान सहन करना पड़ता है. एक दिन धन्नू बिना किसी की बताए ग़ुस्से में अपना घर छोड़ देता है और गांव से बहुत दूर शहर के रास्ते पर वह गुप्ता जी के ढाबे पर काम करता है. वह कड़ी मेहनत और लगन से काम करता है. कुछ दिनों के बाद वह अपने माता-पिता से मिलने गांव जाता है लेकिन उसके गांव पहुंचने के पूर्व ही उसके माता-पिता का देहांत हो चुका होता है. वह वापस ढाबे पर आ जाता है. इस ढाबे पर एक स्वयंसेवी संस्था 'जीवन ज्योत' संस्था के दादा आते रहते हैं और धन्नू के काम की लगन से वे उससे काफ़ी प्रभावित होते हैं. वे धन्नू को अपने साथ जीवन ज्योत में लेकर चले जाते हैं. दादा उसके पढ़ने की इच्छा को देखकर उसे जीवन ज्योत में ही पढ़ाते हैं. धन्नू सब कुछ जल्दी सीख जाता है और वह जीवन ज्योत संस्था में सेवा कार्य में जुट जाता है. 'जीवन ज्योत' संस्था के दादा ने धन्नू में एक अजब आत्मविश्वास पैदा किया. यहां उसे धन्नू प्रसाद से डीपी नाम से पुकारा जाने लगता है. जीवन ज्योत में कई बेसहारा लोग आते और वहां के ही हो जाते. इस संस्था की सहायता से बच्चे पढ़ लिखकर बाहर जाते और अपनी आमदनी में से संस्था को पैसा भेजते रहते. कुछ बच्चे विदेशों में भी चले गये थे और इस संस्था को आर्थिक रूप से सहायता करते रहते थे. दादा कई बार विदेशों में जाते रहते हैं तब 'जीवन ज्योत' संस्था को डीपी ही संभालता है. वह अपनी जवाबदारी को बख़ूबी निभाता है. वह इस संस्था में सबका चहेता बन जाता है. एक बार दादा उसे अपने साथ न्यूयार्क ले जाते हैं. न्यूयॉर्क में दादा को हार्ट अटैक आता है और दादा का देहांत हो जाता है. न्यूयॉर्क में डीपी की मुलाक़ात भाईजी जॉन से होती है. भाईजी की सहायता से डीपी दादा का अंतिम संस्कार न्यूयॉर्क में ही करता है. दादा के देहांत के पश्चात 'जीवन ज्योत' की सारी जवाबदारी डीपी के कंधों पर आ जाती है. भाई जी की सलाह पर डीपी न्यूयॉर्क में ही रियल एस्टेट का व्यवसाय प्रारंभ करता है. इस व्यवसाय में डीपी को सफलता मिलती है. डीपी इस व्यवसाय की आमदनी का पैसा जीवन ज्योत संस्था को भेजता रहता है, लेकिन जीवन ज्योत संस्था में ग़रीब, बेसहारा नये सदस्यों की संख्या में प्रतिदिन बढ़ोतरी होती है. डीपी भाई जी की सलाह पर शेयर बाज़ार की

बारीकियों को समझकर इस नये व्यवसाय में निवेश करता है और साथ ही विभिन्न स्थानों पर अपना व्याख्यान (स्पीच) देकर आय के स्रोत बढ़ाता है. डीपी के मन में दादा की दी हुई एक पूंजी थी 'सब अपने हैं, सबका दुःख अपना है, सबकी ख़ुशी अपनी है.' जहां लोग दूसरों के ग्राहकों को खींचने के लिए जी-जान एक कर देते, वहीं डीपी दूसरों की मदद के लिए अपने ग्राहकों को भी उनकी सिफारिश करता. डीपी न्यूयार्क जैसे शहर में भी काफ़ी लोगों का चहेता बन चुका था. समय हमेशा एकसा नहीं रहता. सफलता का सिलसिला कई बार कायम नहीं रह पाता. डीपी के साथ भी यही होता है. इधर भारत में बाढ़ आती है जिससे काफ़ी लोग बेघर हो जाते हैं. वे जीवन ज्योत संस्था में आकर आसरा लेते हैं और ११ मासूम बच्चे जिनके माता-पिता बाढ़ के कारण जीवित नहीं रह पाते हैं वे भी 'जीवन ज्योत' संस्था में लाये जाते हैं. अब डीपी को 'जीवन ज्योत' संस्था में अधिक पैसे भेजने का दबाव था. वह कुछ ज़मीन के टुकड़े, मकान बेचने का विचार कर ही रहा था. लेकिन अभी डीपी का समय ठीक नहीं चल रहा था. रियल इस्टेट के भाव एकदम से गिर गये. डीपी को कुछ अचल संपत्ति कम भाव में ही बेचनी पड़ी. डीपी उन ११ मासूम बच्चों को गोद ले लेता है. इन ११ बच्चों में से एक बच्चा धीरम गंभीर बीमारी से ग्रसित हो जाता है. डीपी धीरम को अमेरिका अपने पास बुलवाकर उसका अच्छे से इलाज करवाता है. इलाज में काफ़ी पैसा ख़र्च होता है. डीपी पैसा कमाने के लिए टैक्सी भी चलाता है. धीरम धीरे-धीरे ठीक होने लगता है. इधर शेयर मार्केट और ज़मीन, मकान के सौदों में डीपी अपनी मेहनत, बुद्धि और लगन से काफ़ी पैसे कमा लेता है. वह अब जीवन ज्योत संस्था और अपने गांव को भरपूर पैसा भेजने लगा. अब डीपी का काम था सेमीनार, वर्कशॉप और कक्षाओं के माध्यम से अपने अनुभवों को बांटना. धन्नू उर्फ़ डीपी उर्फ़ कुबेर ने अपने गांव को ही नहीं अपने गांव के आसपास के गांवों को भी कुबेरमयी बना दिया. अब धन्नू के पास खजानों के कई भंडार हैं. एक देश में ही नहीं, कई देशों में हैं. कुबेर एक विचार से प्रस्फुटित हुआ, क्रांति की तरह फैला और एक तीली से ज्वाला लेकर मशाल में परिवर्तित हो गया.

पुस्तक में यहां-वहां बिखरे सूत्र वाक्य उपन्यास के विचार सौंदर्य को पुष्ट करते हैं जैसे –

'वैसे भी काम करवाना तो हर कोई जानता है पर काम को सम्मान देना हर किसी के बस की बात नहीं.'

'मन के रिश्तों को बनने के लिए कभी किसी शब्द की ज़रूरत नहीं पड़ती.'

'हर किसी को अपनी लड़ाई ख़ुद ही लड़नी पड़ती है.'

'बगैर सैनिकों के दो देशों की सीमा रेखाएं बहुत कुछ कहती हैं, बहुत कुछ सिखाती हैं. मानवता के पाठ, शांति के पाठ, नागरिकों की आपसी समझ और विश्वास के पाठ.'

'उम्र की लकीरों में समझने और समझाने का कौशल छुपा होता है जो हर बढ़ती लकीर के साथ निखरता जाता है.'

'एक जमा पूंजी थी मन में दादा की दी हुई कि — 'सब अपने हैं, सबका दुःख अपना है, सबकी ख़ुशी अपनी है.'

'मैं ऑटोग्राफ़ देना नहीं बनाना चाहता हूं. आपको बनाना चाहता हूं इस लायक कि मैं एक दिन आपसे ऑटोग्राफ मांग सकूं.'

'तालियां अब भी बज रही थीं. उनकी थमती सांसों में मानो हर बजती ताली उनके कानों में फुसफुसा रही थी - 'यहां एक नहीं, कई कुबेर खड़े हैं.' (उपन्यास का अंतिम वाक्य.)

हिंदी साहित्य में कुबेर एक अनूठा उपन्यास है. कथा नायक का संघर्ष बड़ा है, पर कथन-भंगिमा सामान्य है. यही बात उपन्यास को विशिष्टता प्रदान करती है. लेखिका का यह उपन्यास 'कुबेर' ऐसा समसायिक उपन्यास है जो आज तो प्रासंगिक है ही भविष्य में भी प्रासंगिक रहेगा. पुस्तक पाठकों को अपने कर्म-जीवन की यात्रा पर सोचने पर विवश करती है. उपन्यास के भाव पक्ष के साथ ही भाषा पक्ष भी सुदृढ़ है. इस उपन्यास के माध्यम से डॉ. हंसा दीप ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है. यह उपन्यास समकालीन हिंदी उपन्यासों के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुआ है. यह एक प्रेरणादायी उपन्यास है. इसे महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए. डॉ. हंसा दीप एक सशक्त और दिलचस्प उपन्यास लिखने के लिए बधाई की पात्र हैं.

२८-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- ४५२०१६
मो. : ९४२५०६७०३६
ई-मेल : *deepakgirkar2016@gmail.com*

सागर/सीपी

पृष्ठ ४६ से आगे...

और यहां तक कि वेश्याएं भी शामिल थीं जो कंपनी के शासन से बहुत दुःखी थे. इसका मतलब यह हुआ हिंदी क्षेत्र ने यह बहुत बड़ा सपना देखा था. सौ साल के बाद यानी १७५७ में प्लासी की लड़ाई के सौ साल बाद यह क्षेत्र दासता से मुक्त होना चाहता था. आप जानती हैं कि बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए पूरा ज़ोर लगा दिया जाता है और सबसे बड़ी ताकत होती है नैतिक बल. तो इस लड़ाई में अपार नैतिक बल लगा दिया गया था. नैतिक बल का केंद्र था — 'हम सही हैं, हमारी लड़ाई सही है, इसलिए जीत हमारी होगी' कारण चाहे जो रहे हों. हम लड़ाई हार गये, अब श्याम बेनेगल की फ़िल्म 'जुनून' का वह दृश्य याद कीजिए क्रांतिकारी नसीरूद्दीन शाह लड़ाई के मोर्चे पर हार कर घर आता है और अपने भाई शशि कपूर के कबूतरों को उठा-उठा कर पटकने और उड़ाने लगता है. उत्तेजित होकर कह रहा है, 'हम अंग्रेज़ों से इसीलिए हार गये कि हम कबूतरबाज़ी, शतरंजबाज़ी, पतंगबाज़ी में पड़े थे', थोड़ा विचार कीजिए. मनोरंजन के साधन तो हर समाज में होते हैं. क्या उनके कारण कोई हार सकता है? दरअसल इस संवाद के पीछे जो ध्वनित हो रहा है वह 'सांस्कृतिक हार' है.

आप देखेंगी कि १८५७ की असफल क्रांति के बाद सुनियोजित ढंग से यह प्रचार किया गया कि हिंदुस्तान (हिंदी प्रदेश) की भाषा और संस्कृति पतनशील है, उससे अलग हो जाना ही उत्तम है. यह तथाकथित अभियान सौ साल तक चला और इसने हमें संस्कृतिहीन कर दिया. यही कारण है कि आज हिंदी प्रदेशों में सांस्कृतिक आंदोलन की आवश्यकता है. संस्कृति के प्रति उदासीन समाज में क़िताबों की क्या स्थिति हो सकती है, आप समझ सकती हैं. यह बात निश्चित रूप से लेखक को हर तरह सालती है. लेकिन मैं भविष्य के प्रति आस्थावान हूं. स्थिति बदल रही है और बदलेगी.

❋ आपके लेखन में आपके घर, परिवार की क्या भूमिका है?

परिवार से यथासंभव सहयोग मिलता है.

❋ वह क्या है जो अभी लिखा जाना बाक़ी है?

पूरी 'रामकथा' है जो अभी लिखना बाक़ी है.

❋ आपकी राय में लेखन में सम्मान या पुरस्कार क्या भूमिका अदा करते हैं?

सम्मान और पुरस्कार यदि ईमानदारी से दिये जायें तो उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है. वे लेखक और पाठक दोनों को उत्साहित करते हैं.

❋ एक विधा के रूप में आत्मकथात्मक उपन्यास को दूसरे उपन्यासों से कैसे अलग बनायेंगे?

मेरे विचार से आत्मकथात्मक होने के कारण कोई उपन्यास अन्य उपन्यासों से यानी ग़ैर कथात्मक उपन्यासों से अच्छा या बुरा नहीं हो सकता. दोनों ही प्रकार के उपन्यासों के लिए कसौटी एक ही होती है.

❋ आप लेखक न होते को क्या होते?

मैं लेखक न होता तो सफ़ाई कर्मचारी होता या दस्तकार होता.

असगर वजाहत

७९, कला विहार, मयूर विहार, फेज-१,
दिल्ली-११००९१. मो. : ९८१८१४९०१५.
ई-मेल : awajahat45@gmail.com

मधु अरोड़ा
बी-९०१, लेक लुसरेन, लेक न्यू होम्स,
पवई, मुंबई-४०० ०७६
ईमेल : freelancer41@indiatimes.com

औरतनामा

पृष्ठ ४८ से आगे...

ज्योतिर्मौयी ने सहज, सरल भाषा में गद्य/निबंध लिखा, कविताएं लिखीं, कहानियां लिखीं. उन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुए, समारोहों की अध्यक्षता भी प्राप्त हुई लेकिन उन्हें मिला सबसे बड़ा सम्मान, पुरस्कार यह था कि वे अनेक लड़कियों, औरतों की 'रोल मॉडल' बनी थीं. उन्हें लंबी उम्र मिली; वे ९५ साल की उम्र तक भी सक्रिय रहीं, जागरूक रहीं, कर्तव्यों-अधिकारों के प्रति सचेत-सतर्क रहीं.

ज्योतिर्मौयी देवी का दुर्भाग्य, तत्कालीन सामाजिक परंपराओं, व्यवस्थाओं का परिणाम था और शायद आजीवन वही बना भी रहता लेकिन उन्होंने गीली माचिस की डिबिया को सुखाया, तीलियों को संभालकर इस्तेमाल किया और मन-मस्तिष्क में एक दीपक को प्रज्ज्वलित किया. यह संदेश हमें उत्तराधिकार में मिला : 'एक ज्योति-शिखा, सघन से सघन अंधकार से सफलतापूर्वक जूझ सकती है!'

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.), मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : *rajampillai43@gmail.com*

प्राप्ति-स्वीकार

कानपुर टु कालापानी (उपन्यास) **: रूपसिंह चंदेल,** अमन प्रकाशन, १०४-ए/८०सी, रामबाग, कानपुर-२०८०१२ मू. ४२५ रु.
बस्ती बुरहानपुर (उपन्यास) **: रूपसिंह चंदेल,** भावना प्रकाशन, १०९-ए, पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१. मू. ४५० रु.
जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज था (उपन्यास) **: पंकज सुबीर,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-१. मू. २०० रु.
कुबेर (उपन्यास) **: डॉ. हँसा दीप,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५० रु.
कितने अभिमन्यु ? (उपन्यास) **: योगेंद्र शर्मा,** नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२. मू. ३५० रु.
अब किस ठांव चले, रविकांत (उपन्यास) **: दिनेश अग्रवाल,** अंतिका प्रकाशन प्रा. लि., सी-५६, शालीमार गार्डन, एक्स.-२, गाजियाबाद-२०११०५. मू. ३५० रु.
क्रांतिवीर मदारी पासी (उपन्यास) **: बृजमोहन,** रश्मि प्रकाशन, २०४, सनशाइन अपार्टमेंट, बी-३, कृष्णा नगर, लखनऊ-२२६०२३. मू. १६० रु.
कथा-पर्व (कथा संग्रह) **: सं. माधव सक्सेना "अरविंद" व रूपसिंह चंदेल,** अमन प्रकाशन, १०४-ए/८०सी, रामबाग, कानपुर-२०८०१२ मू. ५२५ रु.
कथा-समय (क. सं.) **: सं. रूपसिंह चंदेल व माधव सक्सेना "अरविंद",** के. एल. प्रकाशन, डी-८, इंद्रपुरी, लोनी, गाजियाबाद-२०११०२. मू. ४०० रु.
जागती आंखों का सपना (क. सं.) **: मंजुश्री,** नीरज बुक सेंटर, सी-३२, आर्यनगर सोसायटी, दिल्ली-११००९२. मू. ३९५ रु.
प्रवास में आसपास (क. सं.) **: डॉ. हंसा दीप,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५० रु.
सॉफ्ट कॉर्नर (क. सं.) **: राम नगीना मौर्य,** रश्मि प्रकाशन, २०४, सनशाइन अपार्टमेंट, बी३, कृष्णा नगर, लखनऊ-२३. मू. १७५ रु.
भीतर दबा सच (क. सं.) **: डॉ. रमाकांत शर्मा,** हर्ष पब्लिकेशंस, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. ३५० रु.
कबूतर और कौए (क. सं.) **: डॉ. रमाकांत शर्मा,** हर्ष पब्लिकेशंस, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. १९५ रु.
सूरत का कॉफी हॉउस... (अनु. व संपा.) **: डॉ. रमाकांत शर्मा,** हर्ष पब्लिकेशंस, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२. मू. ३५० रु.
एक्वेरियम तथा अन्य कहानियां (क. सं.) **: महेंद्र सिंह,** राज पब्लिशिंग हॉउस, कौशिक पुरी, पुराना सीलमपुर, दिल्ली-३१. मू. ४५० रु.
इज्तिरार (आत्मकथ्य) **: प्रबोध कुमार गोविल,** साहित्यागार, धामाणी की गली, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२००३. मू. २५० रु.
पाकिस्तान जिंदाबाद (क. सं.) **: डॉ. गोपाल नारायण आवटे,** भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली-११००९०. मू. ३०० रु.
बूंद तथा अन्य कहानियां (बाल कथाएं) **: ताराचंद मकसाने,** आर. के. पब्लिकेशन, दहिसर (पू.), मुंबई-४०००६८. मू. १५० रु.
यादों की धरोहर (साक्षात्कार) **: कमलेश भारतीय,** आस्था प्रकाशन, मिठ्टापुर रोड, जालंधर. मू. २७५ रु.
वता मेरा मौतनामा (नाटक) **: प्रबोध कुमार गोविल,** दृष्टि प्रकाशन, ५३/१७, प्रतापनगर, सांगानेर, जयपुर-३०२०३३. मू. २५० रु.
इस समय तक (कविता सं.) **: धर्मपाल महेंद्र जैन,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५० रु.
वह और नहीं, एक कवि है! (क. सं.) **: राजेंद्र आहुति,** बोधि प्रकाशन, सी-४६, सुदर्शनपुरा इंड. एरिया, जयपुर-६. मू. २५० रु.
हूं तो एक बादल ही (क. सं.) **: प्रेम टंडन,** जीएच-४/६८, मीरा अपार्टमेंट, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली-११००६३. मू. २०० रु.
गणतंत्र के चरवाहे (नवगीत सं.) **: प्रमोद कुमार "सुमन",** अंजुमन प्रकाशन, मुठ्ठीगंज चौराहा, इलाहाबाद-२११००३. मू. २०० रु.
सहस्त्रधारा (क. सं.) **: रजनी साहू,** बस्तर पाति प्रकाशन, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर-४९४००१. मू. १२० रु.
मैं बनूंगा गुलमोहर (क. सं.) **: सुशोभित सक्तावत,** लोकोदय प्रकाशन, शंकर पुरी, छितवापुर रोड, लखनऊ-२२६००१. मू. १५० रु.
भारत भाग्य विधाता (काव्य) **: आचार्य नीरज शास्त्री,** जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार, मथुरा-२८१००१. मू. २०० रु.
दो तितलियां और चुप रहने वाला लड़का (ल. सं.) **: प्रबोध कुमार गोविल,** अनुकृति प्रकाशन, ५३/१७, गणपति एन्क्लेव, मांग्यावास, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२०. मू. १८०.
शब्द लिखेंगे इतिहास (ल. सं.) **: सेवा सदन प्रसाद व डिंपल गौड़ ॠसुमनॠ,** आर. के. पब्लिकेशन, ओवरी पाढ़ा, दहिसर (पू.), मुंबई-४०००६८. मू. २७५ रु.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१९"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१९ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०१९ के चारों अंक "**कथाबिंब**" की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,...९, १०) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस अभिमत-पत्र का प्रयोग करें अथवा मात्र दस कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर लिख कर भेज सकते हैं या ई-मेल द्वारा भेजें. प्राप्त अभिमतों के आधार पर इस वर्ष से *सर्वश्रेष्ठ कहानी* (१५०० रु. - एक), *श्रेष्ठ कहानी* (१००० रु. - तीन) तथा *उत्तम कहानी* (७५० रु. के छः) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. कथाबिंब ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	**आपका क्रम**
१. अधूरी कहानी - एम. जोशी हिमानी	
२. दूसरा राज महर्षि - अरुण अर्णव खरे	
३. गाइड - संदीप शर्मा	
४. धुंध छटने के बाद - गोविंद उपाध्याय	
५. जश्न - प्रशांत पांडेय	
६. उपचार - राजेश जैन	
७. केर, बेर-सी दोस्ती - कीर्ति दीक्षित	
८. फिर वही सड़क - दिलीप दर्श	
९. कथा-पंडाल - सुरेंद्र रघुवंशी	
१०. बिला वजह - डॉ. अशोक गुजराती	
११. जहर का प्याला - डॉ. उमेश कुमार सिंह	
१२. सुंदरवन की अनोखी कथा - डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी	
१३. तुम हो तो - संतोष श्रीवास्तव	
१४. बेड नं. ९ - वंदना शुक्ला	
१५. फ़ैसला - चंद्रभान "राही"	
१६. फ़ेयर ड्राफ़्ट - मीनाक्षी दुबे	
१७. गुडमॉर्निंग सर - राजेंद्र कुमार शास्त्री "गुरू"	
१८. ओलों की बरसात - डॉ. गोपाल नारायण आवटे	
१९. सुरंग भरे पहाड़ - अंशु जौहरी	
२०. बिदा - डॉ. मालती जोशी	
२१. पेइंग गेस्ट - राजगोपाल सिंह वर्मा	
२२. उफ़ान - जयंत	
२३. वह अब नहीं आयेगी - सुरेंद्र अंचल	
२४. काकू की जेल यात्रा - ओमप्रकाश मिश्र	

आपके अपने पुस्तकालय के लिए ज़रूरी पुस्तकें

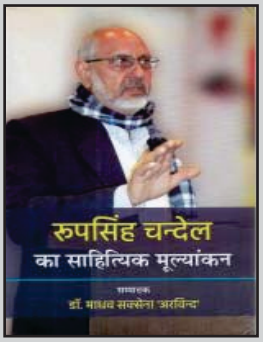

मूल्य ७२५ रु.

रूपसिंह चन्देल का साहित्यिक मूल्यांकन

सम्पादक : डॉ. माधव सक्सेना ''अरविंद''

अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी रामबाग,
कानपुर-२०८०१२

ई-मेल : amanprakashan0512@gmail.com

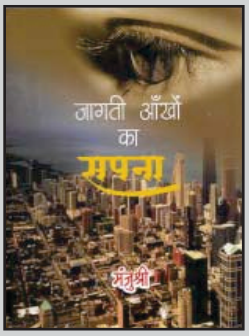

मूल्य ३९५ रु.

जागती आँखों का सपना (कहानी-संग्रह)

लेखिका : मंजुश्री

नीरज बुक सेंटर, सी-३२, आर्यनगर सोसायटी,
प्लॉट-९१, आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२

ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

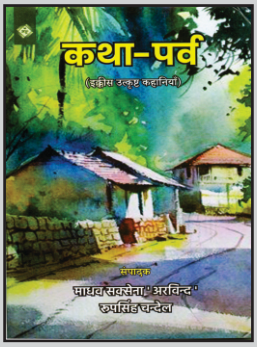

मूल्य ५२५ रु.

कथापर्व

अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी रामबाग, कानपुर-२०८०१२

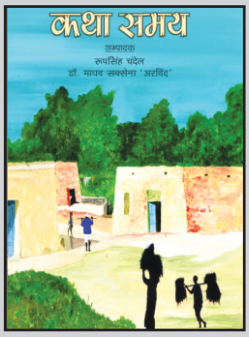

मूल्य ४०० रु.

कथा समय

**भावना प्रकाशन, १०९-ए,
पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१**

ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

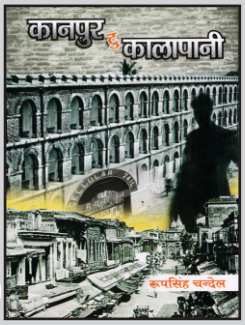

मूल्य ४२५ रु.

कानपुर टू कालापानी

अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी रामबाग, कानपुर-२०८०१२

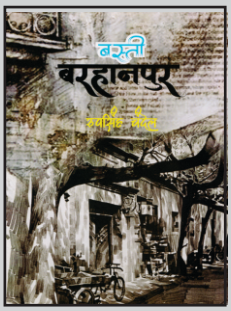

मूल्य ४५० रु.

बस्ती बरहानपुर

**भावना प्रकाशन, १०९-ए,
पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१**

ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

२० प्रतिशत छूट का लाभ उठायें.

पत्रिका का पता : ए-१०, बसेरा, ऑफ घिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

GO CASHLESS
WITH RuPay® DEBIT CARD

- e-Wallet
- Online Shopping
- Utility Bill Payments
- Online Bookings (Railway, Air, Movie, Etc.)
- Over 12 Lakhs Swipe Machines Across India
- Over 2 Lakhs ATMs Across India

*T & C Apply

Corporate Office:
140, Vivek Darshan,
Sindhi Society, Chembur
Mumbai - 400 071

जनकल्याण
(Scheduled Bank)

JANAKALYAN SAHAKARI BANK LTD.

Come and Feel the Change ...

www.jsblbank.com | Toll-free 1800-22-5381 | f | | in

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.-1 के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-400 075 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071. फोन : 25515541